राजनैतिक सिद्धान्त

↓

चिन्तन

विश्लेषण

सिद्धान्त निर्माण

परम्परागत

आदर्शमुखी

(क्या होना चाहिए)

यह मूल्यों पर बल देता है

विचारक = प्लेटो, अरस्तु, ग्रीन, हीगल, जॉन लॉक

आधुनिक रा. सि.

यथार्थवादी

(क्या है)

यह तथ्यों पर बल देता है

(1) डेविड ईस्टन

(2) आमण्ड व पॉवेल

(3) रॉबर्ट ~~डासल~~ डहल

(4) कॉल डायज

विशेषताएँ =

राजनीतिक सिद्धान्त

अनुशासन
(विषय)

विशेषताएँ
(i) निश्चित क्षेत्र
(ii) विकसित विधियाँ व प्रविधियाँ
(iii) मान्यताएँ
(iv) विषय के विकसित सिद्धान्त
(v) शाखाएँ व प्रशाखाएँ
(vi) शोध का नूतन क्षेत्र

राजनीतिक सिद्धान्त ⇒

प्रस्तावना ⇒

राजनीतिक सिद्धान्त की आवश्यकता किसी भी विषय को एक स्वायत्त "अनुशासन" बनाने के लिए उनमें स्वयं को दिशा निर्देश देने और विकसित करने की का सामर्थ्य होना चाहिए एक स्वतंत्र 'अनुशासन' (विषय) के लिए आवश्यक है कि उसका अपना विषय क्षेत्र स्पष्ट और निश्चित उसकी अध्ययन सम्बन्धी मान्यताएँ हो एवम् विकसित पद्धतियां एवं प्रविधियां हो उसकी अपनी शैक्षिक शाखाएँ और प्रशाखाएँ हो, उसके पास नूतन क्षेत्रों में शोध और सर्वेक्षण करने का अभिनव क्षेत्र इन सभी के अतिरिक्त उसकी सबसे बड़ी आवश्यकता है कि उसके पास एक अनुमानात्मक विकसित एवम् तथा रचनात्मक सिद्धान्त हो किसी भी विषय को स्वतंत्र अनुशासन स्तर दिये जाने के लिए सिद्धान्त एक पूर्व शर्त है केवल वैज्ञानिक पद्धति के प्रयोग मात्र से अथवा तथ्यों के विषय में पर्यवेक्षण, वर्णन या प्रावेध कथन से ही कोई विषय एक शैक्षिक अनुशासन नहीं बन जाता है उसके पास अपना सुविकसित सिद्धान्त आधुनिक राजनीतिक सिद्धान्त राजनीति विज्ञान को स्वतंत्र अनुशासन बनाने की दिशा में प्रयासरत है इसलिए उसका अध्ययन एवम् विश्लेषण आवश्यक है

डेविड ईस्टन ने राजनीति शास्त्र में सिद्धान्त की भूमिका और महत्व पर विशेष बल दिया ईस्टन ने सर्वप्रथम राजनीतिक सिद्धान्त की आवश्यकताओं की ओर राजनीति शास्त्रियों का ध्यान आकर्षित किया ईस्टन के अनुसार सिद्धान्त का निर्माण राजनीति शास्त्र को व्यवस्थित विज्ञान बनाने की एक आवश्यक शर्त है और उसके अभाव में राजनीति शास्त्र व्यक्तित्व हीन है

परम्परागत राजनीतिक सिद्धान्त ⇒

इसमें मूल्यों पर चिन्तन किया जाता है परम्परागत राजनीतिक सिद्धान्त और राजनीतिक दर्शन पर्यायवाची कहे जा सकते हैं प्लेटो, अरस्तु, जॉन लॉक, हिगल, ग्रीन आदि उतने ही महान दार्शनिक थे जितने की महान सिद्धान्त निर्माता

आधुनिक राजनीतिक सिद्धान्त ⇒

इसमे मूल्यो की बजाय तथ्यों पर बल दिया जाता है यह सिद्धान्त परम्परागत राजनीतिक सिद्धान्त के विरोध स्वरूप उत्पन्न हुआ यह सिद्धान्त यथार्थवादी दृष्टिकोण पर

Scanned with CamScanner

आधारित है इसके प्रमुख विचारक डेविड ईस्टन, ऑमण्ड व पावेल, रॉबर्ट हन्टइहल, कॉल डायच

सिद्धान्त से अभिप्राय ⇒

सिद्धान्त शब्द की उत्पत्ति यूनानी शब्द "थ्योरिया" से हुई है जिसका अर्थ है समझने की दृष्टि! दूसरे शब्दो मे इसका अर्थ है

सिद्धान्त
|
~~समझना~~ थ्योरिया
|
अर्थ "समझने की दृष्टि"

मानको का एक समूह जिसके आधार पर सैद्धान्तिक विचार-विमर्श के लिए प्रश्न और आधार सामग्री लेने या छोड़ने का निर्णय किया जाता है किसी भी घटना के अध्ययन के लिए अनेक दृष्टिकोण (उपागम) हो सकते है

दृष्टिकोण का अगला चरण सिद्धान्त कहलाता है जब दृष्टिकोण का कार्य विचाराधीन विषय के बारे में समस्याओ और आधार सामग्री के चुनाव से आगे निकल जाता है तब दृष्टिकोण सिद्धान्त का रूप ले लेता है "सिद्धान्त" वे तर्क संगत अनुमान है जो किसी भी घटनाक्रम के मूल कारणों की विवेचना करते है "सिद्धान्त" वे प्रस्थापनाएं है जिससे किसी वस्तु की व्याख्या करने का प्रयत्न किया जाता है अर्थात सिद्धान्त का मुख्य अर्थ है व्याख्या करना

किसी भी विषय या घटना का

राजनीतिक सिद्धान्त निर्माण की प्रक्रिया
- चिन्तन
  |
- विश्लेषण → दृष्टिकोण
  |
- व्याख्या की
- चरम परिणति ⇒ सिद्धान्त निर्माण

परिभाषाएँ ⇒

1 कोहन के अनुसार यह शब्द एक खाली चैक के समान है जिसका संभावित मूल्य उसके उपयोग करता वह उसके उपयोग पर निर्भर है

2. कार्ल पॉपर " सिद्धान्त एक प्रकार का जाल है जिससे जगत को पकड़ा जाता है

संक्षेप में " सिद्धान्त " एक विश्लेषणात्मक युक्ति जिसकी सहायता से तथ्यो की व्याख्या तथा उनके विषय मे पूर्व कथन किया जा सकता है इसमें परस्पर ~~सम्बन्ध~~ सम्बद्ध नियमो का समूहीकरण होता है उनमें नवीन परिकल्पनाएँ, व्याख्याएं तथा नियमो की सृजनशक्ति होती है

राजनीतिक सिद्धान्त की ~~व~~ दो प्रमुख धाराएँ ⇒

नीतिक सिद्धान्त दो श्रेणियो मे विभक्त है

(i) आदर्शी या परम्परागत धारा

(ii) अनुभाविक या आधुनिक धारा

Scanned with CamScanner

आदर्शी सिद्धान्तो मे राजनीतिक व्यवस्थाओ के बारे मे कोई कल्पना पहले ही कर ली जाती है और फिर उस कल्पना को रचनात्मक रूप दिया जाता है
जैसे प्लेटो ने पहले दार्शनिक राजाओ की कल्पना और फिर उस कल्पित आदर्श के आधार पर आदर्श राज्य की संरचना निर्मित की इसका सामान्यतः ठोस तत्वो से विशेष सम्बन्ध नही होता
आनुभाविक सिद्धान्तो राजनीतिक व्यवहार के वास्तविक तथ्यो को समझकर सिद्धान्तो का निर्माण किया जाता है इसमे राजनीति शास्त्री स्वयं तथ्यो के संकलन के लिए राजनीतिक व्यवहार के क्षेत्र मे जाकर राजनीतिक व्यवहार का अवलोकन करता है आकडे एकत्रित कर ठोस तथ्यो के आधार पर सिद्धान्त प्रतिपादन का कार्य करता है इस प्रकार प्रस्यापित सिद्धान्तो को आनुभाविक कहते है और इनका सीधा सम्बन्ध प्रचलित राजनैतिक वास्तविकताओ से होता है

राजनैतिक सिद्धान्तो की प्रकृति ⇒

राजनीतिक सिद्धान्त की प्रकृति को दो आधारो पर स्पष्ट किया जा सकता है

परम्परागत राजनीति सिद्धान्त की प्रकृति ⇒

परम्परागत विचारक सिद्धान्त निर्माता होने के साथ-साथ दार्शनिक भी थे प्लेटो से काम्ट हीगल, ग्रीन तक राजनैतिक सिद्धान्तों को सदैव सदैव दर्शनशास्त्र के एक अंग के रूप में प्रतिपादित किया गया उन्होंने मानवजीवन और समाज के लक्ष्यो एवम् मूल्यो की और अपना ध्यान लगाया इनकी प्रमुख विशेषता निम्नलिखित है

परम्परागत सिद्धान्त मूल्यो पर बल देते है

1. यह सिद्धान्त आदर्शवादी है
2. यह क्या होना चाहिए पर बल देते है
3. इसका अध्ययन संकीर्ण है क्योंकि उन्होने केवल
4. विकसित यूरोपीय देशो की शासन व्यवस्थाओ का अध्ययन किया
इनका अध्ययन वर्णात्मक एवम् औपचारिक है
5. यह राजनीतिक संस्थाओ का अध्ययन करता है
6. आधुनिक राजनीतिक सिद्धान्त ⇒

यह अनुभववाद और वैज्ञानिक पद्धतियाँ पर आधारित है यह मानव व्यवहार के यथार्थ अध्ययन से सम्बद्ध है यह राजनीति को दर्शन, कल्पना और इतिहास इत्यादि से लाकर विज्ञान बनाने का एक प्रयास है ~~आधुनिक~~

1. यह सिद्धान्त यथार्थवादी है
2. यह क्या है बपर बल देता है
3. इसका अध्ययन विस्तृत है क्योंकि यह विकसित के साथ विकासशील देशो की शासन व्यवस्थाओ का अध्ययन करता है
4. इसका अध्ययन विश्लेषणात्मक और अनौपचारिक है
5. यह राजनीतिक प्रक्रिया का अध्ययन करता है

राजनीति सिद्धान्त और विज्ञान में अन्तर

अनेक बार राजनीति सिद्धान्त और विज्ञान को एक

ही समझ लिया जाता है। लेकिन वास्तविकता ये नहीं है राजनीतिक विज्ञान राजनीतिक सिद्धान्त की अपेक्षा बहुत व्यापक है। राजनीतिक विज्ञान इतना व्यापक है कि इसके अन्तर्गत इसके राजनीतिक सिद्धान्त, राजनीतिक चिन्तन, और व्यावहारिक राजनीति सरकार, राजनीति संगठन और राजनीति को प्रभावित करने वाले राजनीति संगठन आदि सभी कुछ आ जाते हैं

राजनीति विज्ञान में सिद्धान्त का महत्व ⇒

सिद्धान्त व्याख्यात्मक उपकरण होते हैं। यह उन सामान्य विवरणों को जिन्हें मनुष्य अपने प्रयोजन के लिए निर्माण की एक प्रक्रिया है और कला की होते। सिद्धान्त का राजनीतिक विज्ञान में उपयोग एवं महत्व इस प्रकार है

1 राजनीति को वैज्ञानिक अध्ययन बनाना राजनीति विज्ञान के विद्वानों का अरस्तु के समय से ही यह प्रयत्न रहा है कि राजनीतिक व्यवहार से सम्बन्धित ज्ञान को विज्ञान का रूप जिस प्रकार दिया जाये। राजनीति को विज्ञान की श्रेणी में लाने का मूल उद्देश्य निरन्तरताओं तथा समानताओं की तलाश पर सुनिश्चित या सम्भावित व्यवहारों का संकेत किया है

राजनीति व्यवहार को समझना ⇒

राजनीति शास्त्रियों का यह विशेष उत्तरदायित्व है कि वे राजनीति प्रक्रियाओं का वैज्ञानिक विश्लेषण कर राजनीति व्यवहार के संबंध में सामान्यीकरण प्रस्तुत करें जिससे राजनीति के विशेषज्ञ होने के नाते वे जनसाधारण, अभिजन राजनीतिज्ञों के लिए राजनीतिक व्यवहार के निष्पक्ष एवं निडर मार्ग दर्शन बनें

3. स्वायत्त अनुशासन के रूप में प्रतिष्ठित करना ⇒

राजनीति विज्ञान को एक स्वायत्त अनुशासन के रूप में प्रतिष्ठित करने के लिए अनिवार्य है इसी प्रकार इस विषय में एकीकरण, सामंजस्य, पूर्वकथनीयता एवं वैज्ञानिकता लाना तथा अन्य शोध सम्भावनाएँ निर्भर है

4) सिद्धान्त अवधारणात्मक विचारबन्ध का कार्य करता है डेविड ईस्टन ने एक अवधारणात्मक विचारबन्ध के रूप में सिद्धान्त का महत्व बताया यह एक दीपसूचक की तरह दिशानिर्देश करता है यह तथ्य संग्रह एवं शोध का प्रेरणा और दिशा प्रदान करता है

5) शासन प्रणाली एवं शासकों को औचित्यपूर्णता प्रदान करता है

शासन प्रणाली और शासकों के कार्यों को औचित्यपूर्णता प्रदान करने में सिद्धान्त एक उपकरण का कार्य करता है। वे कभी राष्ट्रवाद के नाम पर तो कभी लोकतन्त्र और समाजवाद के नाम पर अपने प्रभाव का विस्तार करते हैं

संक्षेप में राजनीति शास्त्र में ऐसे व्यापक सिद्धान्तों की तलाश की जा रही है जो सम्पूर्ण विश्व के राजनीतिक व्यवहार को समझने में सहायता करें एक अच्छे सिद्धान्त से सिद्धान्तीकरण की ओर

Scanned with CamScanner

अधिक गति मिलती है वर्तमान के वैज्ञानिक युग में इन सिद्धान्तों की उपयोगिता और अधिक बढ़ गई है

निगमनात्मक — सामान्य से विशेष
आगमनात्मक — विशेष से सामान्य की ओर

माण्टेस्क्यू फ्रांस का विचारक था

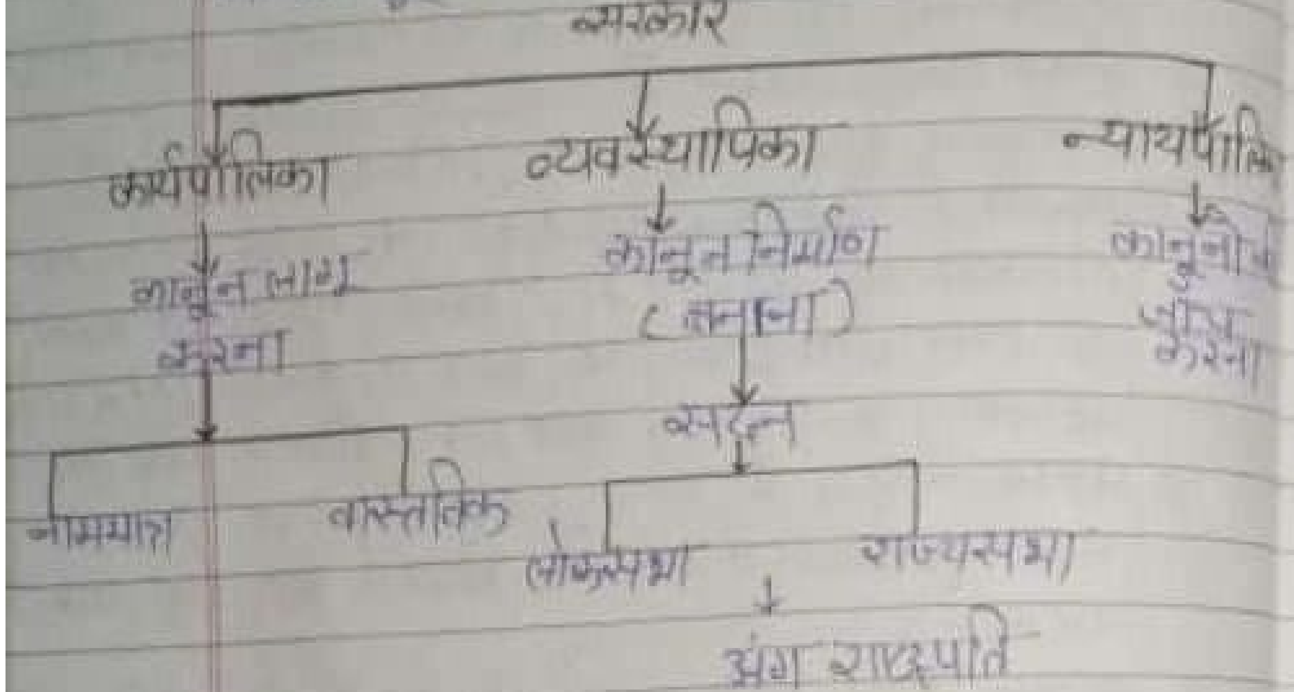

अध्ययन पद्धति ⇒
" जीव विज्ञान के लिए जो महत्व सूक्ष्मदर्शी यंत्र का है ज्योतिष विज्ञान के लिए जो महत्व और उपयोग दूरदर्शक यंत्र का है वही उपयोग और महत्व सामाजिक विज्ञानों के वैज्ञानिक पद्धति का है " ज्ञान की प्राप्ति के लिए रूप से दो अध्ययन पद्धति पायी जाती है

(i) आगमनात्मक
(ii) निगमनात्मक

आगमनात्मक पद्धति के अन्तर्गत विशिष्ट तथ्यों से सामान्य तथ्यों की ओर अध्ययन किया जाता है। निगमनात्मक पद्धति में कुछ सामान्य सिद्धान्तों के सत्य होने की कल्पना पहले ही कर ली जाती है और इन सामान्य सिद्धान्तों को विशेष परिस्थितियों में क्रियान्वित कर निष्कर्ष निकाले जाते है इसमें सामान्य से विशेष की ओर अध्ययन किया जाता है

प्रमुख अध्ययन पद्धतियाँ ⇒

1. पर्यवेक्षणात्मक पद्धति ⇒
इस पद्धति के अन्तर्गत मानवीय इन्द्रियों की सहायता से सम्बन्धित तथ्यों का निकटता से अध्ययन किया जाता है इस पद्धति का सर्वाधिक प्रयोग प्राकृतिक विज्ञानों में किया जाता है लेकिन वास्तविकता पर आधारित होने के कारण वर्तमान समय में राजनीति विज्ञान में भी इस पद्धति का प्रयोग होने लगा है
इस पद्धति का प्रयोग जेन्स ब्राइस ने अपनी पुस्तक *the spirit of laws* में किया है। इस पद्धति का विशेष गुण यह है कि स्वयं के पर्यवेक्षण और चिंतन पर निर्भर होने के कारण यह सत्य के प्रथम

साधन के रूप में कार्य करती है इस पद्धति के आधार पर किये जाने वाले अध्ययन का वास्तविकता से सीधा सम्बन्ध होता है

सीमाएं ⇒

अनेक उपयोगिताओं के बावजूद इस पद्धति की अपनी कुछ सीमाएं है जो इस प्रकार है

(i) विभिन्न देशों में स्वयं जाकर अध्ययन करने का अवसर सभी शोधार्थियों को नहीं मिला बल्कि कुछ विशेष सूचन सम्पन्न विचारक ही इस पद्धति का प्रयोग कर पाते है

(ii) इस पद्धति की उपयोगिता इस बात से सीमित हो जाती है कि यह किसी संस्था के वर्तमान तथ्यों का तो अध्ययन कर सकता है लेकिन भूत और भविष्य का नहीं।

सावधानियाँ ⇒

1. अध्ययनकर्ता को पक्षपात रहित होना चाहिए

2. तथ्य घटनाओं पर आधारित हो न कि अनुमानों पर

3. अवलोकन एकांगी तथा क्षणिक न है

ऐतिहासिक पद्धति ⇒

राजनैतिक संस्थाओं का निर्माण नहीं किया जाता है बल्कि वे विकास का परिणाम होती है अतः प्रत्येक राजनीतिक संस्था का एक अतीत होता है और उसके अतीत परिचित होकर ही उसके यथार्थ स्वरूप का अध्ययन किया जाता है इसलिए राजनीति विज्ञान के शोधार्थी के लिए इस पद्धति का विशेष महत्व है

इस पद्धति की उपयोगिता के कारण ही अरस्तु ने इस पद्धति का सर्वाधिक प्रयोग किया इसके अलावा लॉस्की मान्टेस्क्यू मैकियावली, हीगल और मैक्सवेबर जैसे विचारकों ने भी इस पद्धति का किसी न किसी रूप में प्रयोग किया है

यह पद्धति हमें अतीत का ज्ञान नहीं प्राप्त करती है और भविष्य के लिए पथ-प्रदर्शन करती है लॉस्की के अनुसार "सम्पूर्ण राजनीति इतिहास का ही दर्शन है"

सावधानियाँ ⇒

1. अध्ययनकर्ताओं को ऊपरी समानताओं और सादृश्यताओं के चक्कर में नहीं पड़ना चाहिए जैसे ⇒ चीन की साम्यवादी क्रान्ति और रूस की साम्यवादी के समानताओं के बावजूद मौलिक अन्तर है

2. अध्ययनकर्ता का दृष्टिकोण निष्पक्ष होना चाहिए

Scanned with CamScanner

इतिहास की घटनाओं के आधार पर वर्तमान
3. समस्या का हल प्रत्येक परिस्थिति में नहीं
निकला जा सकता " इतिहास की पुनरावृत्ति
होती है " अर्द्ध सत्य है

सीमाएँ ⇒ प्रत्येक समस्या कुछ विशेष परिस्थि
(1) थतियो का परिणाम होती है और प्रत्येक
समस्या का हल उस समय विशेष की परि
स्थितियो के अनुसार ही निकला जा
सकता है इसलिए ऐतिहासिक पद्दति वर्तमा
न और भविष्य की सभी समस्याओं का
हल निकलाने में सहायक नहीं होती है
इतिहास घटनाओं का विवरण मात्र होता
2 इसके अन्तर्गत नैतिक मूल्यों पर विचार
नहीं किया जाता है

तुलनात्मक पद्दति ⇒ तुलनात्मक पद्धति ऐति
हासिक पद्दति की पूरक है इस पद्दति के
अन्तर्गत अध्ययनकर्ता विभिन्न राज्यो स
नो, नीतियो एवंम् कार्यों का तुलनात्मक
अध्ययनकर्ता विभिन्न राज्यो, संगठनो, नीतियो
एवंम् कार्यों का तुलनात्मक अध्ययनकर्ता है
इसी के आधार पर राजनीतिक सिद्धान्तो का
प्रतिपादन किया जाता है इस पद्दति का आ
धिक प्रयोग राजनीति विज्ञान के जनक अरस्
के द्वारा किया गया वर्तमान समय में मा

लॉड ब्राइस, डी टॉकविले, सरहेनरी मेन, आदि
आदि विचारको ने इस पद्धति का सफलतापूर्वक
प्रयोग किया है अरस्तु ने 158 संविधानो का
तुलनात्मक अध्ययन कर क्रान्ति के कारणो की
विवेचना की मान्टेस्क्यु ने फ्रांसीसी संविधान
की तुलना इंग्लैण्ड के संविधान से करते हुए
शक्ति पृथक्करण का सिद्धान्त दिया

सीमाएँ ⇒

1 अनेक बार भ्रमवंश असमान संस्थाएँ
के बीच तुलना कि जाती है
2. तुलना करते समय यदि संबन्धित सामाजिक,
आर्थिक वातावरण एवम् मानव स्वभाव का ध्यान
न रखा जाय तो तुलना के निष्कर्ष गलत सिद्ध
हो सकते है उदाहरण के लिए भारत और इंग्लैण्ड
के प्रजातन्त्रो की तुलना करते हुए भारत में जाति
वाद धार्मिक विभिन्नता तथा आर्थिक पिछड़ापन, आ
की अवहेलना नहीं की जा सकती

सावधानियाँ ⇒

1 तुलनात्मक पद्दति को अपनाते समय
समानताओं के साथ-2 असमानताओं का भी ध्यान
रखना चाहिए और परिणाम निकालने में जल्दबाजी
नहीं करनी चाहिए
2. अध्ययनकर्ता को मानव स्वभाव और समय विशेष
की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक परिस्थितियो का
भी ज्ञान होना चाहिए तुलना करते समय ऐसी
संस्थाओ का चयन करना चाहिए जिनकी ऐतिहा

Scanned with CamScanner

मिक पृष्ठभूमि समान हो अतः बहुत कम हो
अध्ययनकर्ता को इस पद्धति का प्रयोग वैज्ञा-
3. निक आधार पर करना चाहिए

प्रयोगात्मक पद्धति ⇒ राजनीति विज्ञान का अध्ययन
विषय मानव होने के कारण इस विषय मे
प्रयोग के लिए वैसा स्थान नहीं है जैसा कि
पदार्थ विज्ञानो मे होता है लेकिन फिर भी
राजनीति विज्ञान मे प्रयोग किये जाते है और
जिसके अन्तर्गत किये जाने वाले प्रयोगो की
विशेष प्रकृति होती है
राजनीति के क्षेत्र मे ऐसे अनेक प्रयोग किये
जा चुके है जैसे = 1919 के भारत शासन
अधिनियम द्वारा प्रान्तो मे द्वैध शासन की
स्थापना की गई लेकिन इसकी कूर असफल-
ता के कारण 1935 के अधिनियम के द्वारा
इसे समाप्त समाप्त कर दिया गया (2) 61
वे संविधान संशोधन के द्वारा मताधिकार
की आयु 21 वर्ष से घटाकर 18 वर्ष कर
दी गई यह राजनीति का एक प्रयोग ही
था।

सीमाएँ ⇒
पदार्थ विज्ञानो मे प्रयोगकर्ता का परिस्थि-
1. तियों पर पूर्ण नियंत्रण होता है और वह मन
परिस्थितियाँ उत्पन्न कर सकता है लेकिन राज
विज्ञान मे देशकाल की परिस्थितियों का इच्छानु

निर्धारण सम्भव नही है और प्रयोगकर्ता को पूर्व
का इच्छानुसार निर्धारण सम्भव नही है और प्रयोगकर्ता
को पूर्व निश्चित परिस्थितियों के अन्तर्गत रहते हुए
कार्य करना पडता है
2. राजनीति विज्ञान मे पूर्णतया प्रामाणिक मापन व्यवस्था
का अभाव होता है
3. पदार्थ विज्ञानो मे प्रयोगो को उस समय तक दोहराया
जाता है जब तक अन्तिम परिणाम नहीं निकल
जाता है लेकिन राजनीति विज्ञान मे प्रयोगो की
पुनरावृत्ति सम्भव नही

सावधानियाँ ⇒
1. प्रयोगकर्ता को अपनी व्यक्तिगत भावना
और दृष्टिकोण से प्रयोग को अलग रखना चाहिए
2. प्रयोगकर्ता को प्रयोग से सम्बन्धित परिस्थितियों
का पूर्णज्ञान होना चाहिए जैसे = प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र
के प्रयोग का स्वीजरलैण्ड मे सफल होना और
अमेरिका मे असफल होना, प्रयोग की सफलता
मे परिस्थितियो की भावना प्रभावशीलता का ही
प्रमाण है

दार्शनिक पद्धति ⇒
दार्शनिक पद्धति निगमनात्मक पद्धति
का ही एक भाग है इसके अन्तर्गत तर्क और कल्पना
का सहारा लिया जाता है यह पद्धति राज्य के
उद्देश्य के संबंध मे कुछ पूर्व धारणाएं लेकर चलती
है और बाद मे यह निश्चित करती है कि उन
उद्देश्यो की प्राप्ति के लिए किस प्रकार के कानून
उपयुक्त है

इस पद्धति का सर्वाधिक प्रयोग प्लेटो की पुस्तक रिपब्लिक, टॉमसमूर की यूटोपिया में देखने को मिलता है इसके अलावा रूसो, सिजविक, ग्राइस, मिल आदि विचारकों ने भी इस पद्धति को प्रमुख रूप से अपनाया है

सीमायें ⇒ इस पद्धति का सबसे बड़ा दोष यह है कि अनेक बार विचारक इस पद्धति को अपना कर कल्पना की उड़ान भरते हुए वास्तविकता से संबंध तोड़ लेते है इसकारण अनेक द्वारा प्रतिपादित विचार व्यवहारिक राजनीति से बहुत दूर हो जाते है

सावधानियाँ ⇒ इस पद्धति को सीमित रूप में ही अपनाया जाना चाहिए। यह सत्य है कि हमारा लक्ष्य आदर्शराज्य की प्राप्ति करना है लेकिन ऐसा करते समय हमें यथासम्भव "क्या होना चाहिए" और "क्या हो सकता है" के सा समन्वय रखना चाहिए

सादृश्य पद्धति ⇒ इस पद्धति का सर्वाधिक प्रयोग ब्लंटश्ली और हर्बट स्पेन्सर ने कि स्पेन्सर ने इस पद्धति को अपनाते हुए और मानव शरीर के बीच अनेक सादृश्यता ढूंढी और उन्हीं के द्वारा पर सावयव प्रतिपादन किया।

इस पद्धति को अपनाते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए की सादृश्य प्रमाण नहीं है यह तो एक सम्भावना का सूचक मात्र है निश्चितता का नहीं।

वैधानिक पद्धति ⇒ यह प्रणाली राज्यों की एक वैधानिक इकाई मानती है जिसका कार्य कानून बनाना है और उसे लागू करना है
इस प्रणाली के अनुसार राज्य वैधानिक अधिकारों और कर्तव्य का समूह है डायसी, विलोबी, डग्विट आदि विचारकों ने इस पद्धति को अपनाने के लिए जोर दिया है
लेकिन इस प्रणाली का प्रमुख दोष यह है कि इसके द्वारा उन सामाजिक व्यक्तियों को छुता दिया जाता है जो संविधान, कानून, तथा मानवीय संबंधो के आधार पर कार्य करती है

सांख्यिकीय पद्धति ⇒ इस पद्धति को वर्तमान समय मे सर्वाधिक रूप में प्रयोग में लिया जाता है मतदान, जनसंख्या, राष्ट्रीय आय, अल्पसंख्यक और बहुसंख्यक वर्ग की शक्ति, जनमत प्रचार, आदि विषयों का इस पद्धति के आधार पर अध्ययन किया जा सकता है इस पद्धति के अन्तर्गत किसी विषय के संदर्भ आकड़े एकत्रित किये जाते है और विभिन्न परिस्थितियों में उन आकड़ो के आधार

Scanned with CamScanner

निष्कर्ष निकला जाता है इस पद्धति का प्रयोग राजनीति विज्ञान मे इस पद्धति का प्रयोग स्वतंत्र रूप में न होकर ऐतिहासिक, तुलनात्मक, दार्शनिक पद्धति के सहायक रूप में किया जाता है

जीवशास्त्रीय पद्धति ⇒

इस पद्धति के समर्थक राज्य को एक सावयव इकाई मानते है और राज्य के संगठन और विकास के साथ एक प्राणी वैज्ञानिक इकाई की समानता स्थापित करते है इस पद्धति को प्रमुखरूप से हर्बर्ट स्पेन्सर, डुरखिम और बर्गर्स आदि विचारको ने किया है

इस पद्धति का प्रमुख दोष यह है कि इसके अन्तर्गत अपनाई गई सादृश्यता इसके सादृश्ताऐ हमे किसी निष्कर्ष तक नही पहुँचाती है वस्तुतः प्राणी वैज्ञानिक तुलना वास्तविक होने की अपेक्षा सतही रह जाती है

समाजशास्त्रीय पद्धति ⇒

इस पद्धति के अन्तर्गत राज्यों को एक सामाजिक इकाई माना जाता जिसमे समाज का निर्माण करने वाले व्यक्ति जैसे गुण होते है इसके अन्तर्गत व्यक्ति जीवन की तरह राज्य के जीवन का विकास भी नियमो के आधार पर होता है यह लोग

एक स्वतंत्र पद्धति न होकर दृष्टिकोण मात्र है

मनोवैज्ञानिक पद्धति ⇒

इस पद्धति के अन्तर्गत व्यक्ति सम्भाव समूहगत स्वभाव की प्रगतियो के आधार पर राजनीतिक गतिविधियों के अध्ययन का कार्य किया जाता है इस पद्धति का सर्वाधिक प्रयोग ग्राहम वालस, मैक्डूगल, वेजहॉट और समनर के द्वारा किया गया। चुनाव, जनमत, राजनैतिक दल आदि का अध्ययन करने के लिए यह पद्धति सफल सिद्ध हुई है

निष्कर्ष ⇒

राजनीति विज्ञान उपर्युक्त सभी पद्धतियों उपयोगी है वास्तव में यह पद्धतियां परस्पर विरोधी होने के साथ एक दूसरे की पूरक भी है अतः राजनीति विज्ञान में अध्ययन के लिए इनमें से किसी एक पद्धति के ऊपर आश्रित नही रहा जा सकता बल्कि इन पद्धतियों का प्रयोग सम्मिलित प्रयोग ही हमारे लिए उत्तम है

व्यवहारवाद ⇒

व्यवहारवादी उपागम विभिन्न सामाजिक विज्ञानो के अन्तर्गत एक ऐसा बौद्धिक आन्दोलन जिसका उद्देश्य समाज शास्त्रीय चिन्तन को अधिक आनुभाविक, प्रामाणिक और विशुद्ध वैज्ञानिक बनना है

Scanned with CamScanner

1

राजनीतिशास्त्र, राजनीतिक सिद्धान्त और राजनीतिक दर्शन

[POLITICAL SCIENCE, POLITICAL THEORY AND POLITICAL PHILOSOPHY]

"समाज द्वारा सुसंस्कृत मनुष्य सब प्राणियों में श्रेष्ठतम होता है। परन्तु जब वह बिना कानून और न्याय के जीवन व्यतीत करता है, तो वह निकृष्टतम हो जाता है। यदि कोई मनुष्य ऐसा है जो समाज में न रह सकता हो अथवा जिसे समाज की आवश्यकता ही न हो, क्योंकि वह अपने आप में पूर्ण हो, तो उसे मानव समाज का सदस्य मत समझो। वह जंगली जानवर या देवता ही हो सकता है।"

—अरस्तू

राजनीतिशास्त्र का परिचय—प्रसिद्ध यूनानी दार्शनिक अरस्तू ने सत्य ही कहा था कि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। मनुष्य समाज में रहकर ही अपना सर्वांगीण विकास कर सकता है। समाज में उसकी विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति अन्य मनुष्यों के सहयोग द्वारा होती है। इसलिए मनुष्य सम्बन्धी किसी भी क्रिया-कलाप का अध्ययन बिना समाज के अध्ययन के न तो पूर्ण ही है और न सम्भव ही। जितने भी सामाजिक विषय हैं वे मनुष्य की विभिन्न क्रिया-कलापों का, विभिन्न दृष्टिकोणों से अध्ययन करते हैं; जैसे—अर्थशास्त्र धन सम्बन्धी क्रियाओं का, समाजशास्त्र सामाजिक सम्बन्धों का, इतिहास प्राचीन घटनाओं का, भूगर्भ-विज्ञान पृथ्वी से निकलने वाले पदार्थों का अध्ययन करता है, इसी प्रकार राजनीतिशास्त्र में राज्य एवं शासन तथा उन सिद्धान्तों, नियमों, कानूनों तथा संस्थाओं का अध्ययन किया जाता है जो राज्य में मानव-व्यवहार को नियमित करते हैं।

'राजनीति' शब्द की उत्पत्ति—राजनीतिशास्त्र उतना ही प्राचीन है जितना कि राज्य। राज्य के अस्तित्व में आते ही लोगों ने राज्य के विभिन्न पहलुओं पर सोचना आरम्भ कर दिया। इस प्रकार राजनीति का विकास हुआ। राज्य से सम्बन्धित ज्ञान का व्यवस्थित रूप हमें सर्वप्रथम प्राचीन यूनान में मिलता है। ग्रीक में छोटे-छोटे नगर राज्य होते थे जो स्वतन्त्र रूप से संगठित होते थे। ग्रीक विद्वानों ने राजनीति शब्द का प्रयोग राज्य से सम्बन्धित कला के रूप में किया।

'राजनीति' शब्द अंग्रेजी भाषा के 'POLITICS' शब्द का हिन्दी अनुवाद है। यह शब्द ग्रीक भाषा के 'पोलिस' (POLIS) शब्द से बना है, जिसका अर्थ ग्रीक भाषा में नगर राज्य (city state) होता है। धीरे-धीरे राज्यों का स्वरूप परिवर्तित होता गया तथा उनके

Scanned with CamScanner

आकार एवं कार्यों में महान् परिवर्तन आ गया। इसके परिणामस्वरूप इस शास्त्र के प्रति भी लोगों की धारणा में परिवर्तन आया। वे इसे विस्तृत दृष्टिकोण से देखने और सोचने लगे। अब इसका नाम राजनीतिशास्त्र सर्वाधिक मान्य हो गया।

परिभाषाएँ
[DEFINITIONS]

किसी भी विषय के अध्ययन के प्रारम्भ में उसकी निश्चित और स्पष्ट परिभाषा को जान लेना आवश्यक है। गार्नर ने कहा है कि राजनीतिशास्त्र की उतनी ही परिभाषाएँ हैं, जितने राजनीतिशास्त्र के लेखक। इस कठिनाई का कारण यह है कि विभिन्न विचारकों द्वारा विभिन्न उद्देश्यों से तथा विभिन्न अर्थों में राजनीतिक शब्दों के प्रयोग के कारण राजनीतिक शब्दावली में पर्याप्त भ्रान्ति फैली हुई है। एक ही शब्द का प्रयोग विभिन्न अर्थों में किया जाता है। इसके बावजूद राजनीतिशास्त्र की युक्तिसंगत तथा यथासम्भव सर्वमान्य परिभाषा ढूंढ निकालना आवश्यक है।

राजनीतिशास्त्र की परिभाषा के सम्बन्ध में परम्परागत दृष्टिकोण

राजनीतिशास्त्र की परिभाषाएँ उनके विद्वानों ने विभिन्न दृष्टिकोणों के आधार पर दी है। बहुत से विद्वान राजनीतिशास्त्र के अध्ययन को केवल 'राज्य' के अध्ययन तक ही सीमित मानते हैं जबकि दूसरे, इसके अध्ययन को केवल 'सरकार' के अध्ययन तक सीमित रखना चाहते हैं। कुछ विद्वान ऐसे भी हैं जो राजनीतिशास्त्र के अध्ययन की परिधि में 'राज्य और सरकार' दोनों को समाहित करना चाहते हैं किन्तु एक दृष्टिकोण और भी सामने आने लगा है कि राजनीतिशास्त्र का क्षेत्र केवल राज्य और सरकार तक ही सीमित न होकर उससे भी अधिक व्यापक है। इन्हीं दृष्टिकोणों के आधार पर राजनीतिशास्त्र की परिभाषाएँ दी जा सकती हैं।

I. राजनीतिशास्त्र की राज्य के अध्ययन के रूप में परिभाषाएँ

कुछ विद्वान राजनीतिशास्त्र को केवल राज्य का अध्ययन मानते हैं। उनके अनुसार इस विषय का क्षेत्र केवल राज्य की व्यवस्था और अध्ययन करने तक सीमित है। सरकार इसके अध्ययन में नहीं आती है। कुछ परिभाषाएँ निम्न प्रकार हैं—

ब्लुंट्श्ली (Bluntschli) के अनुसार, राजनीतिशास्त्र "वह विज्ञान है जिसका सम्बन्ध राज्य से होता है और जो राज्य की आधारभूत अवस्थाओं, इसके तात्विक स्वभाव, इसकी अभिव्यक्ति के विभिन्न रूपों तथा इसके विकास को समझने का प्रयास करता है।"

गार्नर (Garner) के अनुसार, "राजनीति विज्ञान का आरम्भ व अन्त राज्य के साथ होता है।"[1]

गैरीज के शब्दों में, "राजविज्ञान राज्य को शक्ति की संस्था के रूप में इसके सम्पूर्ण सम्बन्धों, इसकी उत्पत्ति, इसकी भूमि और जनता, इसके उद्देश्य, इसके नैतिक महत्त्व, इसकी आर्थिक समस्याएँ, जीवन दशाएँ और ध्येय आदि की व्याख्या और विवेचना करता है।"

उपरोक्त सभी परिभाषाओं में 'राज्य' शब्द पर जोर दिया गया है।

---

1 "Political Science begins and ends with the state." —*Garner*

II. राजनीतिशास्त्र की सरकार के अध्ययन के रूप में परिभाषाएँ

इस वर्ग के विचारक राजनीतिशास्त्र को केवल सरकार के अध्ययन तक सीमित मानते हैं, राज्य की ओर जरा भी संकेत नहीं करते हैं। कुछ परिभाषाएँ निम्न प्रकार हैं—

लीकॉक (Leacock)—"राजनीतिशास्त्र सरकार से सम्बन्धित है।"[1]

सीले (Seeley)—"राजविज्ञान शासन सम्बन्धी बातों पर ठीक उसी प्रकार विचार करता है जिस प्रकार अर्थशास्त्र सम्पत्ति, जीव विज्ञान जीवन, बीजगणित अंकों तथा रेखागणित स्थान एवं परिमाण के सम्बन्ध में विचार करते हैं।"

इस प्रकार इन विचारकों ने राजनीतिशास्त्र के सैद्धान्तिक पक्ष को बिल्कुल ही अछूता छोड़ दिया है; राजनीतिशास्त्र को केवल सरकार से सम्बन्धित कर दिया है। लेकिन वास्तविकता यह है कि सरकार राज्य का एक तत्व मात्र है। राज्य की बिना सरकार के कल्पना भी नहीं की जा सकती है। सरकार राज्य को मूर्त रूप प्रदान करती है। अतः राजनीतिशास्त्र को केवल सरकार का अध्ययन मानना असंगत है।

III. राजनीतिशास्त्र की राज्य तथा सरकार दोनों के अध्ययन के रूप में परिभाषाएँ

राजनीति विज्ञान में राज्य और सरकार दोनों का अध्ययन करने वाले विचारकों की परिभाषाएँ निम्न प्रकार हैं—

पॉल जैनेट (Paul Janet)—"राजनीतिशास्त्र समाजशास्त्र का वह भाग है, जिसमें राज्य के आधार और सरकार के सिद्धान्तों का विचार किया जाता है।"[2]

डिमॉक (Dimock)—"राजनीतिशास्त्र का सम्बन्ध राज्य तथा उसके साधन सरकार से है।"[3]

गिलक्राइस्ट (Gilchrist)—"राजनीतिशास्त्र राज्य और सरकार की सामान्य समस्याओं का अध्ययन करता है।"[4]

गैटिल (Gettell)—"राजनीति विज्ञान राज्य के अतीत, वर्तमान तथा भावी स्वरूप का, राजनीतिक संगठन तथा राजनीतिक कार्यक्रम का, राजनीतिक संस्थाओं तथा राजनीतिक विचारधाराओं का अध्ययन करता है।"

प्रोफेसर विलोबी (Willoughby)—"सामान्य रूप से कहा जाता है कि राजनीतिशास्त्र को तीन विषयों राज्य, सरकार और कानून का अध्ययन करना होता है।"

IV. मानवीय तत्त्व पर आधारित परिभाषाएँ

राजनीतिशास्त्र की उपरोक्त सभी परिभाषाओं में मानवीय तत्त्व की अवहेलना की गयी है। राज्य का अध्ययन करते समय मानव का सम्यक् अध्ययन आवश्यक है। मानवीय संस्थाएँ

---

1 "Political Science deals with Government." —*Leacock*
2 "Political Science is that part of Social Science which treats of the foundation of the state and the principles of the Government." —*Paul Janet*
3 "Political Science is concerned with the state and its instrumentality Government." —*Dimock*
4 "Political Science deals with the general problems of the State and Government." —*Gilchrist*

Scanned with CamScanner

राज्य और सरकार को बहुत प्रभावित करती है। इसलिए ब्रायन हेल्म ने यहाँ तक कहा है कि, "राजनीति विज्ञान के सम्पूर्ण सम्बन्ध का निर्धारण उसकी मानव विषयक नैतिक मान्यताओं द्वारा ही होता है।" लास्की का भी विचार है कि, "राजनीतिशास्त्र के अध्ययन का सम्बन्ध संगठित राज्यों से सम्बन्धित मनुष्य के जीवन से है।"

परम्परागत राजनीतिशास्त्र की विशेषताएँ

[FEATURES OF THE TRADITIONAL POLITICAL SCIENCE]

प्लेटो से परम्परागत राजनीतिशास्त्र का प्रारम्भ होता है। उसने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'रिपब्लिक' में आदर्श राज्य का चित्रण किया है जो तर्क और कल्पना पर आधारित है। रोमन विचारक सिसरो का दर्शन न्याय और प्राकृतिक कानून की अवधारणा पर आधारित था। संत ऑगस्टाइन ने अपनी पुस्तक *'The City of God'* के माध्यम से ईश्वरीय राज्य की व्याख्या की। रूसो की सामान्य इच्छा का सिद्धान्त परम्परागत राजनीति विज्ञान का अंग है। हीगल विश्व के मूल को विश्वात्मा कहता है जबकि ग्रीन इसे शाश्वत चेतना मानता है। परम्परागत राजनीति विज्ञान की विशेषताएँ निम्नलिखित है—

1. आदर्श अध्ययन—परम्परागत राजनीति विज्ञान में यथार्थ से परे केवल कल्पना और तर्क पर आधारित आदर्श अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। प्लेटो के आदर्श राज्य का दार्शनिक शासक, रूसो की सामान्य इच्छा का सिद्धान्त, कान्ट का नैतिक वाणी, हीगल की विश्व आत्मा और ग्रीन का शाश्वत चैतन्य इसके उदाहरण हैं।

2. राज्य एक नैतिक संस्था—परम्परागत राजनीतिशास्त्र राज्य को एक नैतिक संस्था मानता है जिसका उद्देश्य व्यक्ति को नैतिकता के मार्ग पर निरन्तर आगे बढ़ाना है। परम्परागत राजनीतिशास्त्र के अधिकांश विचारक आचारशास्त्र और नैतिकता में विश्वास करते थे। इनकी धारणा थी कि मूल्यों से हटकर राजनीति पर विचार नहीं किया जा सकता।

3. औपचारिक संस्थाओं के अध्ययन पर बल—परम्परागत राजनीतिशास्त्र में राजनीतिक और औपचारिक संस्थाओं के अध्ययन पर बल दिया जाता रहा, न कि राजनीतिक प्रक्रिया और राजनीति के प्रेरक तत्वों पर। परम्परागत राजनीतिशास्त्र के विद्वान राजनीतिक जीवन की व्याख्या करने के लिए राजनीतिक संस्थाओं का विधि और संविधान के संदर्भ में अध्ययन को पर्याप्त मानते थे। इसलिए राजनीतिक संस्थाओं के अध्ययनों में व्यावहारिक पक्ष की उपेक्षा की गयी।

4. अध्ययन की परम्परागत पद्धतियाँ—परम्परागत राजनीतिशास्त्र के अध्ययन में ऐतिहासिक, दार्शनिक और कानूनी परम्परागत पद्धतियों को अपनाया गया, न कि नवीन वैज्ञानिक पद्धतियों को। डॉ. एस. पी. वर्मा के मतानुसार परम्परागत राजनीति विज्ञान के विकास की चार अवस्थाएँ हैं—ऐतिहासिक, विश्लेषणात्मक, आदर्शात्मक-उपदेशात्मक (Normative-Prescriptive) और वर्णनात्मक-परिभाषात्मक। ये अवस्थाएँ एक-दूसरे की विरोधी नहीं थीं और समय-समय पर एक ही युग में विभिन्न प्रवृत्तियों को काम करते हुए पाते हैं।

5. संकुचित अध्ययन—परम्परागत राजनीतिशास्त्र के विद्वानों ने अपने अध्ययन को यूरोप और अमरीका की राजव्यवस्थाओं के अध्ययन तक ही सीमित रखा। उन्होंने एशिया, अफ्रीका, लैटिन अमरीका के देशों की राजव्यवस्थाओं के अध्ययन में रुचि नहीं ली। इन अध्ययनकर्ताओं ने अपने अध्ययन को उदारवादी लोकतन्त्र तक ही सीमित रखा और विभिन्न प्रकार की शासन व्यवस्थाओं को अपने अध्ययन में सम्मिलित नहीं किया। एकस्टीन और ऐप्टर के शब्दों में, "परम्परागत दृष्टिकोण पाश्चात्य राजनीतिक व्यवस्थाओं तक सीमित रहा और प्रमुखतया एक संस्कृति-संकुल या समूह का ही इसमें अध्ययन किया गया।"

6. व्यक्तिनिष्ठ अध्ययन—परम्परागत राजनीतिशास्त्र का अध्ययन वस्तुनिष्ठ न होकर व्यक्तिनिष्ठ रहा। इसके अध्ययन में अध्ययनकर्ताओं का व्यक्तित्व और दृष्टिकोण प्रभावकारी रहा। अधिकांश विचारकों के विचार आचारशास्त्र और दर्शनशास्त्र से प्रभावित थे। अध्ययनकर्ताओं ने राजनीतिक जीवन तथा सामाजिक लक्ष्यों और मूल्यों की ओर ध्यान दिया। उदाहरणार्थ—मध्य युग के यूनानी ईसाई संत दार्शनिकों का ईश्वरीय राज्य स्थापित करने का विचार और यूनानी दार्शनिकों का नैतिक जीवन की उपलब्धि का विचार।

राजनीतिशास्त्र की परिभाषा के सन्दर्भ में आधुनिक दृष्टिकोण

द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् राजनीति विज्ञान की परिभाषा के सम्बन्ध में एक नवीन दृष्टिकोण का जन्म हुआ है। इस नवीन दृष्टिकोण ने यह अनुभव करा दिया है कि मानव की आर्थिक या राजनीतिक क्रियाएँ एक-दूसरे से प्रभावित होती हैं।

इसी प्रकार अन्य क्रियाएँ भी किसी न किसी रूप में मानव की राजनीतिक क्रियाओं को प्रभावित करती हैं। इसलिए मानव की राजनीतिक क्रियाओं को जानने के लिए यह उचित और आवश्यक है कि उसके उस समस्त व्यवहार का अध्ययन किया जाये जो इन क्रियाओं को प्रभावित करता है। यह नवीन दृष्टिकोण व्यवहारवाद कहलाता है।

राजनीति विज्ञान के आधुनिक लेखकों; जैसे—केटलिन (Catlin), लासवैल (Lasswell), मैक्स वेबर (Max Weber), डेविड ईस्टन (David Easton), डहल (Dahl) आदि ने राजनीति विज्ञान को शक्ति, प्रभाव और सत्ता का अध्ययन बताया है। इनकी कुछ परिभाषाएँ निम्न प्रकार हैं—

केटलिन (Catlin)—"राजनीति विज्ञान शक्ति का विज्ञान है।"[1]

डेविड ईस्टन (David Easton)—"राजनीति विज्ञान समाज में मूल्यों का सत्तात्मक वितरण है।"[2]

लासवैल और केपलान (Lasswell and Kaplan)—"एक अनुभाविक खोज के रूप में राजनीति विज्ञान शक्ति के निर्धारण और सहभागिता का अध्ययन है।"[3]

डॉ. हसजार और स्टीवेन्सन (Huszar and Stevenson)—"राजनीतिशास्त्र अध्ययन का वह क्षेत्र है जो प्रमुखतया शक्ति सम्बन्धों का अध्ययन करता है। इन शक्ति सम्बन्धों के कुछ प्रमुख रूप हैं, व्यक्तियों में परस्पर, व्यक्ति और राज्य के मध्य शक्ति सम्बन्ध और राज्यों में परस्पर शक्ति सम्बन्ध।"

---

1 "Political science is the science of power." —Catlin

2 "Political science deals with the authoritative allocation of values in a society." —David Easton

3 "Political science, as an empirical inquiry is the study of the shaping and sharing of power." —Lasswell and Kaplan

रॉबर्ट ए. डहल (Robert A. Dahl)—"राजनीति विज्ञान का शक्ति, नियम व सत्ता से सम्बन्ध है।"[1]

आमण्ड तथा पावेल (Almond and Powell)—"आधुनिक राजनीति विज्ञान में हम राजनीतिक व्यवस्था का अध्ययन और विश्लेषण करते हैं।"[2]

मैक्स वेबर (Max Weber)—"राजनीतिक शक्ति-विभाजन में हिस्सा लेने या उसे प्रभावित करने का संघर्ष है, चाहे यह राज्यों के बीच हो या राज्य के अन्दर समूहों के बीच।"

रॉब्सन (Robson)—"शक्ति एक ऐसी बुनियादी अवधारणा है जो राजनीतिक अध्ययन के सभी विभागों को एक सूत्र में पिरो देती है।"

मॉर्गेन्थो (Morgenthau)—"अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति, हर राजनीति की तरह, शक्ति-प्राप्ति का संघर्ष है। अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का अन्तिम उद्देश्य चाहे जो भी हो, शक्ति सदैव इसका निकट उद्देश्य रहता है।"[3]

वी. ओ. की (V. O. Key)—"राजनीति शासक तथा शासितों, आधिपत्य तथा अधीनता आदि मानवीय सम्बन्धों से सम्बन्धित है। राजनीति का अध्ययन इन राजनीतिक शक्तियों के सम्बन्धों का अध्ययन है।"

उपरोक्त राजनीतिशास्त्र सम्बन्धी परम्परावादी और आधुनिक परिभाषाओं के विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि यह अब केवल राज्य अथवा सरकार से सम्बन्धित विज्ञान नहीं, बल्कि मनुष्य के राजनीतिक व्यवहार, राजनीतिक क्रियाओं व प्रक्रियाओं, शक्ति, सत्ता तथा मानव समूहों की अन्तःक्रियाओं का शास्त्र है।

आधुनिक राजनीति विज्ञान की प्रकृति

[NATURE OF MODERN POLITICAL SCIENCE]

द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् राजनीतिशास्त्र के विद्वानों ने इस विषय के परम्परागत अध्ययन पद्धति से हटते हुए, नये राज्यों के अस्तित्व में आने से उनकी समस्याओं के समाधान के लिए आधुनिक राजनीति विज्ञान की नवीन पद्धति को अपनाया। इस नवीन पद्धति की प्रकृति निम्न प्रकार देखी जा सकती है—

1. वास्तविक परिस्थितियों का अध्ययन—आधुनिक राजनीति विज्ञान के अध्ययनकर्ता परम्परागत सीमाओं से बाहर निकल कर अध्ययन करते हैं कि राजनीतिक तथ्यों और घटनाओं का अध्ययन करना चाहते हैं चाहे वे तथ्य और घटनाएँ कहीं भी उपलब्ध हों, चाहे उनका सम्बन्ध समाजशास्त्र से हो या अर्थशास्त्र से, धर्म से हो अथवा व्यक्ति, परिवार, राष्ट्र और विश्व से। अब अध्ययनकर्त्ता का यह प्रयास रहता है कि अध्ययन का आधार वास्तविक परिस्थितियों को बनाया जाये।

---

1 "Political science deals with power, rule and authority." —*Robert A. Dahl*

2 "In modern political science, we study and analyse the whole political system." —*Almond and Powell*

3 "International politics, like all politics, is a struggle for power, whatever be the ultimate aim of international politics, power is always the immediate aim." —*Morgenthau*

2. वैज्ञानिक पद्धतियों का प्रयोग—आधुनिक राजनीतिशास्त्री अपने अध्ययन को विशुद्ध विज्ञान बनाना चाहते हैं। वे राजनीतिक घटनाओं और तथ्यों को वैज्ञानिक पद्धतियों की कसौटी पर कसना चाहते हैं। वे प्राकृतिक विज्ञान और अन्य समाजशास्त्रों में अपनायी जाने वाली नयी-नयी तकनीकों का अपने अध्ययन में प्रयोग करना चाहते हैं।

3. मूल्य निरपेक्षता—आधुनिक राजनीतिशास्त्री अपने अध्ययन को वैज्ञानिक बनाना चाहते हैं। इसलिए वे मूल्य निरपेक्षता को महत्त्व देते हैं और अपने अध्ययन में मूल्य सापेक्षता के प्रतीकों, जैसे—नैतिकता, स्वतन्त्रता, भ्रातृत्व आदि को स्थान देने के पक्ष में नहीं हैं।

4. यथार्थवादी अध्ययन—आधुनिक राजनीतिशास्त्री अपना अध्ययन परम्परागत आदर्शात्मक और सैद्धान्तिक अध्ययन के स्थान पर यथार्थवादी अध्ययन करना चाहते हैं। अब अध्ययनकर्ता राजनीतिक संस्थाओं का वैसा ही चित्रण करना चाहता है जैसी वे हैं। वह तथ्य पर विशेष बल देने के पक्ष में है। अब अध्ययनकर्ता राजनीतिक संस्थाओं के अध्ययन की अपेक्षा व्यक्तियों के राजनीतिक व्यवहार के विश्लेषण पर अधिक बल देता है। अब राजनीतिक दल, दबाव समूह, मतदान व्यवहार, संचार के साधनों को अध्ययन का केन्द्र बनाया जाने लगा है।

5. अध्ययन अनुभवात्मकता और व्यवहारवाद पर आधारित—आधुनिक राजनीतिशास्त्री अपना अध्ययन अनुभवात्मक (Empirical) आधार पर करना चाहते हैं जिसका आधार व्यवहारवाद है। व्यवहारवादी व्यक्ति, समूह और व्यक्ति के व्यवहार पर बल देते हैं। वे वैज्ञानिक पद्धतियों का प्रयोग करते हैं। उनका उद्देश्य अध्ययन को अधिक वास्तविक बनाना है।

6. शोध और सिद्धान्त का सम्बन्ध—आधुनिक राजशास्त्री अपने अध्ययन को अधिक वैज्ञानिक बनाना चाहते हैं। इसके लिए वे सिद्धान्तों का निर्माण करना चाहते हैं। परन्तु सिद्धान्तों का निर्माण कठोर शोध-पद्धति पर आधारित है। अध्ययनकर्त्ताओं का उद्देश्य राजनीति के सैद्धान्तिक मॉडल (model) विकसित करना है। इसी आधार पर वे राजनीतिक घटनाओं और तथ्यों के सम्बन्ध में खोज करके उनका विश्लेषण करते हैं।

7. अन्तर-अनुशासनात्मक दृष्टिकोण—आधुनिक राजशास्त्री अपने अध्ययन को अधिक वास्तविक बनाने के लिए प्रयासरत हैं। इसके लिए वे अन्य विषयों के अध्ययन को राजनीतिशास्त्र के अध्ययन के साथ मिलाकर करना चाहते हैं, जिसे अन्तर-अनुशासनात्मक अध्ययन (inter-disciplinary study) कहा जाता है। इसके अन्तर्गत राजनीतिशास्त्र के साथ समाजशास्त्र, मनोविज्ञान, अर्थशास्त्र, मानव विकासशास्त्र और जीवविज्ञान का अध्ययन किया जाने लगा है। इसी के परिणामस्वरूप राजनीतिक समाजशास्त्र (Political Sociology), राजनीतिक मनोविज्ञान (Political Psychology), राजनीतिक अर्थशास्त्र (Political Economy) आदि का जन्म हुआ है। डॉ. एस. पी. वर्मा के शब्दों में, "अन्तःशास्त्रीय उपागम अपनाने के कारण राजनीति विज्ञान की विषय-वस्तु में एक प्रकार की क्रान्ति आ गयी है।"

8. व्यापक समस्याओं का अध्ययन—उत्तर-व्यवहारवादी विचारक सामूहिक रूप से राजनीतिक समस्याओं के अध्ययन और उनके समाधान खोजने में लगे हैं। विश्व की वर्तमान समस्याओं; जैसे—परमाणु युद्ध की आशंका, मानव मूल्यों की रक्षा, पिछड़े देशों का विकास, व्यक्ति की स्वतन्त्रता आदि उनके अध्ययन के केन्द्र-बिन्दु हैं।

Scanned with CamScanner

राजनीति विज्ञान के परम्परावादी और आधुनिक दृष्टिकोण में अन्तर (Distinction between Traditional and Modern Perspective of Political Science)

राजनीति विज्ञान के परम्परागत और आधुनिक दृष्टिकोणों में निम्नलिखित अन्तर देखे जा सकते हैं—

1. परिभाषा के सम्बन्ध में अन्तर—परम्परावादी विचारक राजनीति विज्ञान को राज्य और सरकार का अध्ययन मानते हैं, जबकि आधुनिक व्यवहारवादी विचारक राजनीति विज्ञान को मनुष्य के राजनीतिक व्यवहार का अध्ययन। आधुनिक राजनीतिक विचारक राजनीति विज्ञान को शक्ति और सत्ता का विज्ञान मानते हैं।

2. क्षेत्र सम्बन्धी अन्तर—परम्परावादी राजनीति विचारक राजनीति विज्ञान का क्षेत्र राज्य के सम्पूर्ण अध्ययन (अर्थात् राज्य के भूत, वर्तमान तथा भविष्य) और शासन के अंग, कार्य, रूप आदि के अध्ययन तक सीमित मानते हैं जबकि आधुनिक विचारक राजनीति विज्ञान में प्रक्रियाओं का अध्ययन करते हैं; जैसे—संसद में विधि निर्माण प्रक्रिया क्या है, विधि निर्माण का निर्णय कौन लेता है, आदि)।

3. प्रकृति के सम्बन्ध में अन्तर—परम्परावादी विचारक राजनीति विज्ञान को विज्ञान मानने के पक्ष में नहीं हैं जबकि आधुनिक राजनीतिक विचारक राजनीति विज्ञान को पूर्ण विज्ञान बनाने के पक्ष में हैं।

4. अध्ययन पद्धति के सम्बन्ध में अन्तर—परम्परावादी राजनीतिक विचारक अपने अध्ययन के लिए दार्शनिक पद्धति, ऐतिहासिक पद्धति, तुलनात्मक पद्धति, दार्शनिक पद्धति का सहारा लेते हैं जो प्राचीन और अपरिष्कृत हैं जबकि आधुनिक राजनीतिक विचारक राजनीति विज्ञान के अध्ययन के लिए मानव-व्यवहार, आधुनिक उपकरणों का प्रयोग, सांख्यिकीय पद्धति, आनुभविक पद्धति, व्यवस्था विश्लेषण पद्धति, अन्तः अनुशासनात्मक पद्धति का प्रयोग करते हैं।

5. मूल्यों के सम्बन्ध में अन्तर—परम्परावादी राजनीतिक विचारक अपने अध्ययन में आदर्श और नैतिकता के मूल्यों में विश्वास करते हैं जबकि आधुनिक राजनीतिक विचारक मूल्यनिरपेक्षता के समर्थक हैं।

6. उद्देश्यों में अन्तर—परम्परावादी राजनीतिक विचारक राजनीति विज्ञान का उद्देश्य श्रेष्ठ जीवन की प्राप्ति मानते हैं जबकि आधुनिक राजनीतिक विचारक राजनीति विज्ञान का उद्देश्य ज्ञान के लिए ज्ञान प्राप्त करना मानते हैं। वे प्रविधियों पर अधिक बल देते हैं।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि आधुनिक राजनीतिशास्त्री राज्य और राजनीतिक संस्थाओं के अध्ययन को विस्तृत दृष्टिकोण के आधार पर अध्ययन करना चाहते हैं।

राजनीति
[POLITICS]

राजनीति शब्द अंग्रेजी भाषा के Politics शब्द का हिन्दी अनुवाद है। यह शब्द ग्रीक भाषा के पोलिस (Polis) शब्द से बना है जिसका अर्थ ग्रीक भाषा में नगर राज्य (city state) होता है। राजनीतिशास्त्र के जनक अरस्तू ने इसके लिए राजनीति शब्द का प्रयोग किया। अरस्तू के पश्चात् जैलीनेक, सिजविक, हॉल्टजनडार्फ आदि विचारकों ने भी इस विषय के लिए

राजनीति शब्द का ही प्रयोग किया। हैराल्ड लास्की ने अपनी पुस्तक को *'ग्रामर ऑफ पॉलिटिक्स'* (*Grammar of Politics*) का नाम दिया और विल्सन ने अपनी पुस्तक का नाम *'प्रिंसिपल्स ऑफ पॉलिटिक्स'* (*Principles of Politics*) रखा। सर फ्रेडरिक पोलक ने राजनीति को सैद्धान्तिक राजनीति (Theoritical Politics) और व्यावहारिक राजनीति (Practical Politics) दो भागों में विभाजित कर दिया। वर्तमान में राजनीति का अभिप्राय केवल व्यावहारिक राजनीति से लगाया जाता है।

परिभाषाएँ (Definitions)—राजनीति की परिभाषा विद्वानों ने प्रारम्भ से ही देने का प्रयास किया है। राजनीति की परिभाषाओं को दो भागों में रखा जा सकता है। प्रारम्भ से लेकर द्वितीय महायुद्ध काल तक की परिभाषाओं को परम्परागत (Traditional) परिभाषा और युद्धोत्तर काल की परिभाषाओं को आधुनिक (Modern) परिभाषा की श्रेणी में रखा जा सकता है।

परम्परागत परिभाषाएँ (Traditional Definitions)—राजनीति की परम्परागत परिभाषाओं में कुछ परिभाषाएँ निम्न प्रकार हैं—

प्रो. जैक्स के शब्दों में, "राजनीति अध्ययन का वह विषय है जो राज्य और सरकार का अध्ययन करती है।"

प्रो. फेयरली के शब्दों में, "राजनीति में हम राज्य के संगठन और कार्यों का अध्ययन करते हैं। इसके साथ हम उन सिद्धान्तों तथा कार्यों का भी अध्ययन करते हैं जिन पर राज्य रूपी संगठन टिका हुआ है।"[1]

इन परिभाषाओं में राजनीति का सम्बन्ध राज्य और सरकार के संगठन और कार्यों से माना गया है।

आधुनिक परिभाषाएँ (Modern Definitions)—राजनीति के प्राचीन स्वरूप में वर्तमान में निरन्तर परिवर्तन हो रहा है। वर्तमान में राजनीति का क्षेत्र विस्तृत होता जा रहा है जिसके कारण राजनीति में अनेक अनौपचारिक और गैर-संस्थागत संगठन अपना स्थान बनाते जा रहे हैं। राजनीतिक क्रियाओं को समझने के लिए इन संगठनों को समझना भी अनिवार्य है। आधुनिक विद्वानों ने अनौपचारिक संगठनों पर बल देते हुए ही अपनी परिभाषाएँ दी हैं। कुछ परिभाषाएँ निम्नलिखित हैं—

रॉबर्ट के शब्दों में, "राजनीति मानव समुदायों पर शासन करने की कला है।"[2]

हिलमैन के शब्दों में, "राजनीति इस बात का विज्ञान है कि कौन क्या, कब और कैसे प्राप्त करता है।"[3]

हर्बर्ट जे. स्पीरो के अनुसार, "राजनीति वह प्रक्रिया है जिसके आधार पर मानव समुदाय अपनी समस्याओं को सुलझाने का प्रयत्न करता है।"[4]

---

1 "Politics includes a study of the organisation and the activities of states and of the principles and ideals, which underlie political organisation and activities." —*Fairly*

2 "Politics may be defined as the art and practice of government on human societies." —*Robert*

3 "Politics is the science of who gets, what, when and why." —*Hillman*

4 "Politics is the process by which community of human beings deal with their problems." —*Herbert J. Spiro*

Scanned with CamScanner

मैक्स वेबर के शब्दों में, "राजनीति शक्ति के लिए संघर्ष अथवा उन लोगों को प्रभावित करने की कला है, जिनके हाथ में सत्ता है। इस प्रकार राज्यों के मध्य संघर्ष तथा राज्य के अन्दर विभिन्न संगठित समुदायों के बीच संघर्ष दोनों ही राजनीति के अन्दर आ जाते हैं।"

टी. ब्रैनन (T. Brennan) के शब्दों में, "राजनीति सभी रोगों की रामबाण औषधि प्रदान नहीं कर सकती। यह केवल सम्भावनाओं की कला है। अतः इसमें यह बात निहित है कि कुछ सीमा तक समझौते की प्रवृत्ति को अपनाना होगा।"[1]

लिप्सन के शब्दों में, "राजनीति से मेरा आशय सक्रिय विवाद से है।"[2]

इन परिभाषाओं के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि राजनीति का क्षेत्र बहुत विस्तृत है। राजनीति में विद्वानों ने अनेक तत्वों की चर्चा की है।

राजनीति के आवश्यक तत्व

[ESSENTIAL ELEMENTS OF POLITICS]

राजनीति के आवश्यक तत्व निम्नलिखित हैं—

1. राजनीति एक मानवीय प्रक्रिया—राजनीति मानव समाज में पायी जाने वाली एक मानवीय क्रिया है। समाज में मानव का सहयोग और विवाद, संघर्ष आदि स्थितियों से सम्बन्ध स्थापित होता रहता है। समाज में शान्ति व्यवस्था स्थापित करने के लिए प्रयत्न भी चलते रहते हैं। **माइकेल ओकशाट** के शब्दों में, "राजनीति एक ऐसी क्रिया है जिसमें मानव एक नागरिक होने के नाते अपने समुदाय की व्यवस्थाओं और दशाओं के सम्बन्ध में सोचता-समझता है, उसमें परिवर्तन हेतु सुझाव देता है, प्रस्तावित सुझावों को स्वीकार करने हेतु दूसरों को मनाता है तथा परिवर्तनों को आगे बढ़ाने के लिए स्वयं उनके अनुकूल व्यवहार करता है।"

2. राजनीति सर्वव्यापक प्रक्रिया—प्राचीन काल में राजनीति में भले ही राज्य, सरकार और उनके संगठनों का अध्ययन होता रहा हो, परन्तु वर्तमान में राजनीति का क्षेत्र सर्वत्र व्यापक हो गया है। आज परिवार से लेकर विद्यालय तक, घर-आँगन से लेकर बाजार तक, देश से लेकर विदेश तक, ग्रामसभा से लेकर संसद और संयुक्त राष्ट्र तक सभी जगह राजनीति की चर्चा पायी जाती है। इसलिए राजनीति का स्वरूप सर्वत्र व्यापक हो गया है।

3. राजनीति में सक्रियता का पाया जाना—राजनीति में निरन्तर क्रिया-प्रतिक्रिया, संघर्ष-समाधान, हितों की रक्षा और उनका विरोध चलता रहता है। इसलिए व्यवस्था बनाये रखने के लिए निरन्तर सक्रिय रहना अनिवार्य होता है। **मिलर** के मतानुसार, "राजनीति में कुछ मूलभूत प्रश्न होते हैं जो बदलते नहीं हैं, परन्तु उनके समाधान बदलते हैं।"[3]

4. राजनीति एक गतिशील प्रक्रिया—गतिशीलता या परिवर्तनशीलता राजनीति की प्रकृति है। इसलिए राजनीति किन्हीं भी दो देशों में अथवा एक ही देश के दो हिस्सों में एक जैसी नहीं पायी जाती है। और जैसी एक समय पर होती है कुछ समय बाद उसमें परिवर्तन

1 "Politics can never, really provide panaceas, politics is essentially the art of the possible and the possible almost invariably, involves some degree of compromise." —*T. Brennan*

2 "By Politics, I mean active controversy." —*Lipson*

3 "Politics consists of certain fundamental issues. These do not change, but their solutions do." —*Miller*

आ जाता है। **माइकेल ओकशाट** का मत है कि, "राजनीति एक असीम क्रिया है जिसमें न तो कोई निश्चित दिशा है और न जिसमें कोई विराम का स्थान है।"

5. राजनीति के लिए संघर्ष अनिवार्य—राजनीति में संघर्ष अनिवार्य होता है और संघर्ष जितना व्यापक और प्रबल होता है। राजनीति भी उतनी ही व्यापक और प्रबल होती है। जब किसी प्रकार का कोई संघर्ष समाज में नहीं होता है तो उस समय राजनीति भी प्रभावहीन दिखायी देती है। **मिलर** के अनुसार, "राजनीति का सम्बन्ध संघर्ष और मतभेद से है, यदि किसी भी रूप में इनकी उपस्थिति नहीं हो, तो यह स्थिति राजनीतिक नहीं मानी जायेगी और जो भी कार्यवाही होगी, वह गैर-राजनीतिक होगी।" **लिप्सन** के शब्दों में, "राजनीति से मेरा आशय सक्रिय विवाद से है।"

6. राजनीति शक्ति के लिए संघर्ष—राजनीति का केन्द्र-बिन्दु शक्ति प्राप्ति है। आज मनुष्य, समूह, समुदाय, राजनेता, राजनीतिक दल और सभी देश शक्ति प्राप्त की दौड़ में सम्मिलित हैं। सभी अधिक से अधिकतर शक्ति प्राप्त करने के लिए लालायित हैं। यही राजनीति का मुख्य उद्देश्य होता है। इसमें शक्ति प्राप्ति और शक्ति प्रदर्शन का खेल चलता रहता है। **हैंस जे. मॉर्गेन्थो** के शब्दों में, "अन्य सभी राजनीतियों की तरह अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति शक्ति के लिए संघर्ष है। अन्तिम उद्देश्य कुछ भी हो, शक्ति प्राप्ति सदैव ही इसका एक तात्कालिक उद्देश्य होता है।"[1]

7. राजनीति सम्भावना की कला—रॉबर्ट और बिस्मार्क राजनीति को सम्भावना की कला मानते हैं। राजनीति में संघर्षरत विभिन्न गुटों में संघर्ष के समाधान की सम्भावना को तलाशना होता है। यह समझौते की कला ही है जिससे इन संघर्षों को समाप्त करके समाज में शान्ति-व्यवस्था बनायी जाती है। **हिल्मैन** ने राजनीति की परिभाषा करते हुए कहा है कि, "राजनीति इस बात का विज्ञान है कि कौन क्या, कब और कैसे प्राप्त करता है।" इस प्रकार के विचार टी. ब्रैनन ने व्यक्त करते हुए कहा है कि राजनीति समझौते की कला है।

राजनीति और राजनीति विज्ञान में अन्तर (Distinction between Politics and Political Science)

वर्तमान में 'राजनीति' शब्द का प्रयोग अति संकुचित अर्थों में किया जाता है। राज्य के सैद्धान्तिक पक्ष से उसका कोई सम्बन्ध नहीं रह गया है। उससे राज्य के केवल क्रियात्मक पक्ष का ही बोध होता है। आज 'राजनीति' से हमारा अभिप्राय उन राजनीतिक समस्याओं से है जो ग्राम, नगर, प्रान्त, देश और विश्व के सम्मुख हैं। इसी धारणा के कारण **गार्नर** ने कहा है कि, "राजनीति शब्द का अर्थ राज्य के कार्य-कलापों के उस भाग तक सीमित है जो दैनिक गतिविधि के संचालन से सम्बन्ध रखता है।" इसी तरह **गिलक्राइस्ट** ने कहा है कि, "आधुनिक प्रयोग के कारण इसका एक नया अभिप्राय हो गया है, जिसके हमारे विज्ञान के नाम के रूप में यह निरर्थक हो गया है।"

आज तो राजनीति शब्द का प्रयोग और भी संकुचित अर्थों में किया जाने लगा है। दैनिक जीवन में घरेलू राजनीति, समूह राजनीति, कॉलेज तथा गाँव की राजनीति की चर्चा होती

1 "International politics, like all other politics is struggle for power whatever ultimate object may be, power is always immediate goal." —*Morgenthau*

Scanned with CamScanner

है। 'राजनीति' का प्रयोग धोखेबाजी, बेईमानी, झूठ, फरेब आदि अर्थों में किया जाता है। इस अर्नेस्ट बेन के व्यंग्यात्मक शब्द उल्लेखनीय हैं कि, "राजनीति किसी परेशानी को ढूँढ़ने, उसे खोज निकालने, चाहे उसका अस्तित्व हो या न हो, उसका गलत कारण बताने और उसका गलत हल ढूँढ़ निकालने की कला है।"

राजनीतिशास्त्र शब्द में व्यावहारिक और सैद्धान्तिक राजनीति दोनों ही सम्मिलित हैं। राजनीतिशास्त्र एक वास्तविक विज्ञान भी है और आदर्शात्मक विज्ञान भी।

आधुनिक युगीन मान्यता इस पक्ष में अधिक है कि इस विषय का नामकरण 'राजनीतिशास्त्र' होना चाहिए। एक तरफ जहाँ सीले, बर्गेस, विलोबी, गैटिल, गार्नर, लीकॉक और गिलक्राइस्ट इसके पक्ष में हैं, वहाँ दूसरी ओर 1948 में यूनेस्को (UNESCO) के तत्वावधान में आयोजित सम्मेलन में भी इस विषय के लिए 'राजनीति विज्ञान' शब्द को ही मान्यता दी गयी। इसी बात को गिलक्राइस्ट ने इन शब्दों में व्यक्त किया है कि, "विवेक तथा प्रयोग के दृष्टिकोण से राजनीति विज्ञान ही उचित नाम है।"[1] इन दोनों में निम्नलिखित अन्तर है—

1. राजनीति एक मानवीय क्रिया जबकि राजनीति विज्ञान इन क्रियाओं को अध्ययन करने वाला विषय—राजनीति का सम्बन्ध व्यक्तियों के राजनीतिक व्यवहार और गतिविधियों से होता है। इसके अन्तर्गत मनुष्यों के शक्ति और हितों के संघर्ष का अध्ययन किया जाता है जो एक सतत् मानवीय क्रिया है। राजनीति विज्ञान में राजनीतिक क्रियाओं का अध्ययन कुछ निश्चित सिद्धान्तों के आधार पर किया जाता है। राजनीति विज्ञान राजनीतिक व्यवहार का क्रमबद्ध ज्ञान प्रस्तुत करता है। इस प्रकार राजनीति मानव की राजनीतिक क्रियाओं का सामूहिक नाम है और राजनीति विज्ञान इन राजनीतिक क्रियाओं के विधिवत् अध्ययन का विषय है।

2. क्षेत्र में अन्तर—राजनीति का क्षेत्र राजनीति विज्ञान के क्षेत्र की अपेक्षा अधिक विस्तृत है। राजनीति में घर, गली, मुहल्ले, ग्राम, शहर, क्लब, संसद, प्रधानमन्त्री, राष्ट्रपति आदि से लेकर विदेश भी इससे प्रभावित हैं जबकि राजनीति विज्ञान इन सबका अध्ययन नहीं कर सकता।

3. स्पष्टता का अन्तर—राजनीतिशास्त्र राज्य और सरकार तथा अन्य औपचारिक संस्थाओं का अध्ययन करता है। इनके अध्ययन में स्पष्टता और निश्चितता होती है जबकि राजनीति किसी क्षेत्र विशेष के मानवों के कार्य-व्यवहार का नाम है। इसमें स्पष्टता का अभाव पाया जाता है।

4. उद्देश्य का अन्तर—राजनीति का उद्देश्य शक्ति और सत्ता प्राप्त करना होता है, जिसके लिए निरन्तर प्रयासरत रहना पड़ता है, जबकि राजनीति विज्ञान का उद्देश्य राजनीतिक गतिविधियों का वैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत करना होता है। राजनीति विज्ञान ऐसे सिद्धान्तों का प्रतिपादन करना चाहता है जिनके आधार पर मनुष्यों के राजनीतिक व्यवहार को निर्धारित किया जा सके।

---

1 "Both reason and usage, therefore, justify the name of political science." —Gilchrist

5. पद्धतियों में अन्तर—राजनीति विज्ञान की परम्परागत और आधुनिक अध्ययन पद्धतियाँ पायी जाती हैं जबकि राजनीति का उद्देश्य राजनीतिक क्षेत्र में साम, दाम, दण्ड, भेद किसी भी प्रकार सफलता प्राप्त करना होता है इसलिए राजनीति की कोई विशिष्ट पद्धति नहीं होती है।

6. मूल्यों के सम्बन्ध में अन्तर—यह कहा जाता है कि राजनीति में मूल्य नहीं होते। मिलर का मत है कि 'राजनीति अपने साथ मूल्यों को वहन नहीं करती।' मैकियावेली भी इस मत का समर्थक है परन्तु सामान्य धारणा इस मत को स्वीकार नहीं करती क्योंकि मूल्यविहीन राजनीति विनाश की ओर ले जाती है।' राजनीति विज्ञान मूल्यनिरपेक्षता पर बल देता है। परन्तु उत्तर-व्यवहार राजनीति विज्ञान को मूल्यों के साथ जोड़ना चाहता है।

7. राजनीति और राजनीति विज्ञान की प्रकृति में अन्तर—राजनीति में सक्रिय व्यक्ति राजनीतिज्ञ (Politician) कहलाता है जबकि राजनीति विज्ञान के अध्ययन में संलग्न व्यक्ति को राजनीतिशास्त्री या राजवैज्ञानिक (Political Scientist) कहा जाता है। राजनीतिज्ञ उखाड़-पछाड़ में सक्रिय होता है इसलिए राजनीति और राजनीतिज्ञ आज सम्मानीय शब्द नहीं माने जाते जबकि राजनीतिशास्त्री अपने गम्भीर अध्ययन में निष्पक्षता का सहारा लेता है इसलिए सम्मानजनक माना जाता है।

राजनीतिक सिद्धान्त की आवश्यकता

किसी भी विषय को एक स्वतन्त्र विषय बनाने के लिए उसकी अपनी मान्यताएँ, क्षेत्र, अध्ययन पद्धति, प्रविधियाँ और एक सिद्धान्त होना अनिवार्य होता है। 'आधुनिक राजनीतिक सिद्धान्त' (Modern Political Theory) राजनीति विज्ञान को एक स्वतन्त्र विषय बनाने के लिए प्रयत्नशील है इसलिए इसके लिए एक सिद्धान्त की आवश्यकता है।

डेविड ईस्टन ने सर्वप्रथम राजनीतिशास्त्र में सिद्धान्त के महत्त्व को समझाते हुए अन्य राजनीतिशास्त्रियों का ध्यान इस ओर आकर्षित किया। ईस्टन का मत है कि राजनीतिशास्त्र को व्यवस्थित विषय बनाने के लिए सिद्धान्त का निर्माण आवश्यक है। ईस्टन के शब्दों में, "मैं यह तर्क प्रस्तुत करूँगा कि सिद्धान्त के कार्यभाग या भूमिका और इसकी सम्भावना की सचेत जानकारी के बिना, राजनीतिक अनुसन्धान छिद्रयुक्त और विजातीय होगा और अपने राजनीतिक विज्ञान अभिमान के वचन को पूर्ण करने में असमर्थ रहेगा।"

परम्परागत राजनीतिक सिद्धान्त में राजनीतिक सिद्धान्त के अन्तर्गत मूल्यों को महत्त्व दिया जाता रहा है। परम्परागत राजनीतिक सिद्धान्त और राजनीतिक दर्शन कुछ अपवादों को छोड़कर पर्यायवाची कहे जा सकते थे। परन्तु आधुनिक राजनीतिक सिद्धान्त परम्परागत राजनीतिक सिद्धान्त से भिन्न है। आधुनिक राजनीतिक सिद्धान्त मूल्यों को महत्त्व नहीं देता। यह केवल व्याख्या करके भविष्यवाणी कर सकता है जबकि परम्परागत सिद्धान्त इस व्याख्या से आगे जाकर यह भी बता सकता है कि क्या होना चाहिए। परम्परागत राजनीतिक सिद्धान्त का सम्बन्ध मूल्यों और नैतिकता से है जबकि आधुनिक राजनीतिक सिद्धान्त मूल्य और नैतिकता से सम्बन्ध नहीं मानता है। व्यवहारवादियों की मान्यता है 'सिद्धान्त' की भूमिका, मूल्य, नैतिकता या आदर्श स्थापित करने के लिए नहीं बल्कि घटना या तथ्यों को व्यवस्थित करके उनकी व्याख्या और भविष्यवाणी करना है। परम्परागत राजनीतिक सिद्धान्त इस बात पर बल देता है कि 'किसे शासन करना चाहिए और क्यों ?' जबकि आधुनिक व्यवहारवादी विचारक इस बात पर बल देते हैं कि 'कौन शासन कर रहा है और कैसे कर रहा है ?'

Scanned with CamScanner

डेविड ईस्टन ने राजनीतिक सिद्धान्त का महत्व बताते हुए कहा है कि, "किसी भी विज्ञान की अभिवृद्धि, आनुभविक अनुसन्धान एवं सिद्धान्त दोनों के विकास तथा उनके मध्य घनिष्ठ सम्बन्धों पर निर्भर करती है।" राजनीतिक सिद्धान्त तथ्यवाद तथा आँकड़ेबाजी से निपटने में सहायक हो सकता है। परन्तु राजनीतिशास्त्र में राजनीतिक सिद्धान्त की स्थिति अच्छी नहीं है। रॉबर्ट डहल के मतानुसार, "अंग्रेजी भाषा-भाषी जगत् में राजनीतिक सिद्धान्त मर चुका है, साम्यवादी देशों में यह बन्दी है और अन्यत्र मर रहा है।" राजनीति विज्ञान के विकसित न होने के अनेक कारण हैं, जैसे—राजनीति विज्ञान में शोध पद्धति का अभाव, राज सिद्धान्त की धारणा का स्पष्ट न होना, राजनीतिज्ञों की राजविज्ञान में अरुचि आदि।

परिभाषा (Definitions)

सिद्धान्त वह तर्कसंगत अनुमान है जो किसी घटनाक्रम के मूल कारणों की व्याख्या करता है। **मीहान** के शब्दों में, "सिद्धान्त मूल रूप से एक विचारात्मक उपकरण है जिससे राजनीतिक जीवन के तथ्यों को सुव्यवस्थित एवं क्रमबद्ध किया जाता है। इसके द्वारा पृथक् दिखने वाली वैश्लेषिक घटनाएँ एक साथ लायी एवं सुव्यवस्थित ढंग से परस्पर सम्बद्ध कर दी जाती है।"[1]

कार्ल पॉपर के अनुसार सिद्धान्त एक प्रकार का जाल है जिससे जगत् को पकड़ा जाता है ताकि उसे समझा जा सके।

कार्ल ड्यूश (Karl W. Duetsch) के शब्दों में, "सिद्धान्त की अवधारणा 'आत्मपरक' और 'वस्तुगत' निहितार्थ रखती है।"

कोहन (Cohen) के शब्दों में, "सिद्धान्त शब्द एक खाली चैक के समान है, जिसका सम्भावित मूल्य उपयोगकर्ता एवं उसके उपयोग पर निर्भर है।"

मॉरिस डुवर्जर के शब्दों में, "सिद्धान्त का अवलोकन प्रयोग और तुलना के परिणामों को एकत्र बनाता है तथा घटनाओं के समूह के अन्तर्गत समझी और पहचानी जाने वाली सामग्री को सम्बद्ध और समन्वित ढंग से अभिव्यक्त करता है।"

हैम्पल (Hample) के अनुसार, "सिद्धान्त से त्रुटिहीन निगमनात्मक रूप से विकसित व्यवस्था तथा व्याख्या होती है, जो इसके शब्दों और वाक्यों को आनुभाविक अर्थ प्रदान करते हैं।"

पोलन्यी (Polasvi) के शब्दों में, "वैज्ञानिक सिद्धान्त सामान्यीकरणों के निगमनात्मक जाल के रूप में, जिससे ज्ञात घटनाओं के कतिपय प्रकारों की व्याख्या अथवा पूर्वकथन किया जा सकता है।"

इज्माक (Isaac) के अनुसार, "राज सिद्धान्त सामान्य कारणों का समुच्चय होता है, जिसमें हमारी द्वारा प्रत्यक्षत: परिचित तथा परिचालनात्मक रूप से परिभाषित अवधारणाएँ होती हैं, इनके अतिरिक्त उसमें और भी अधिक महत्वपूर्ण सैद्धान्तिक अवधारणाएँ जो यद्यपि पर्यवेक्षण से प्रत्यक्षत: सम्बन्धित नहीं होतीं, किन्तु इन अवधारणाओं से तार्किक रूप से जुड़ी हुई होती हैं, पायी जाती हैं।"

---

1 "A theory is a generalisation, or a set of generalisations that explains general statements of explains other theories." —*E. J. Meehan*

डेविड ईस्टन (David Easton) के शब्दों में, "सिद्धान्त संवर्गों (Categories) की आनुभाविक संगतिपूर्णता के लिए हुए एक ऐसी तर्कपूर्ण एकीकृत सेट है जिसके द्वारा राजनीतिक जीवन का विश्लेषण एक राजनीतिक व्यवहार-व्यवस्था के रूप में किया जाना सम्भव है।"

आर्नोल्ड ब्रैश्ट (Arnold Breacht) के अनुसार, "सिद्धान्त किसी ऐसे प्रस्तावना अथवा उन प्रस्तावों का सेट है, जिसका निर्माण विषय-सामग्री (Data) के संदर्भ में प्रायशः अपर्यवेक्षित अथवा अप्रकट अन्तः सम्बन्धों या किसी वस्तु की व्याख्या करने के लिए किया जाता है।"

एन्ड्रयू हैकर (A. Hecker) ने राजनीतिक सिद्धान्त के दो अर्थ बताये हैं, "एक, प्राचीन संदर्भ में इसका अर्थ 'राजनीतिक विचारों के इतिहास' से है" तो दूसरा अर्थ "आधुनिक राजनीतिक विचारधारा के सन्दर्भ में राजनीतिक व्यवहार का यथार्थ और व्यवस्थित अध्ययन है।"

नोबुड हैन्सन ने सिद्धान्त को वेक्षित सामग्री के विषय में बुद्धिगम्य, व्यवस्थित तथा अवधारणात्मक प्रतिमान कहा है।

इन उपरोक्त परिभाषाओं और मतों के आधार पर कहा जा सकता है कि आधुनिक राजनीतिक सिद्धान्त से अभिप्राय राजनीतिक व्यवस्था के उस सामान्य सिद्धान्त से है, जो उससे सम्बन्धित समस्त तथ्यों, परिकल्पनाओं, सामान्यीकरणों की व्याख्या करता है।

राजनीति विज्ञान में सिद्धान्त का महत्व (Significance of the Theory in Political Science)

राजनीति विज्ञान में सिद्धान्त का महत्व निम्नलिखित है—

1. **राजनीति के अध्ययन को वैज्ञानिक बनाना**—सिद्धान्त राजनीति के अध्ययन को वैज्ञानिक बनाना चाहता है। इसके लिए वह वैज्ञानिक व्याख्याएँ प्रस्तुत करने में सहायता देता है। वह राजनीति विज्ञान के सामान्यीकरणों के आधार पर राजनीतिक व्यवहार का एक विज्ञान विकसित करने का प्रयास करता है। जिसके द्वारा नये क्षेत्रों में खोज, नये सामान्यीकरण, नये उपागम एवं सिद्धान्तों की उपलब्धि सम्भव होती है।

2. **राजनीतिक व्यवहार को समझना**—राजनीतिशास्त्रियों का यह दायित्व है कि वे जनसाधारण, अभिजनों और राजनीतिज्ञों के लिए राजनीतिक व्यवहार के निष्पक्ष मार्गदर्शक बनें। इसके लिए यह आवश्यक है कि वे राजनीतिक प्रक्रियाओं का वैज्ञानिक विश्लेषण कर राजनीतिक व्यवहार के सम्बन्ध में सामान्यीकरण प्रस्तुत करें। इसमें राजनीतिक सिद्धान्त बहुत उपयोगी है।

3. **राजनीति विज्ञान को एक स्वायत्त विषय बनाना**—सिद्धान्त के माध्यम से ही किसी विषय को स्वायत्त विषय बनाया जा सकता है। इसी के माध्यम से ही राजनीतिशास्त्र में एकीकरण, सामंजस्य, भविष्यवाणी करना एवं वैज्ञानिकता लाना तथा शोध करना सम्भव है।

4. **सिद्धान्त दिशासूचक का कार्य करता है**—डेविड ईस्टन का मत है कि सिद्धान्त एक दिशा सूचक (compass) की तरह दिशा निर्देश देकर तथ्य संग्रह और शोध की प्रेरणा में सहायक है।

Scanned with CamScanner

5. शासकों को औचित्यपूर्णता प्रदान करना—शासक जो कभी राष्ट्रवाद, कभी लोकतन्त्र और कभी समाजवाद के नाम पर अपने प्रभाव को बढ़ाते रहते हैं, उन्हें औचित्यपूर्णता प्रदान करता है।

सिद्धान्त-प्रकार (Theory-Types)

सिद्धान्त दो प्रकार के पाये जाते हैं—

1. आदर्शी सिद्धान्त (Normative Theory)—आदर्शी सिद्धान्त में राजनीतिक व्यवस्था के सम्बन्ध में एक कोई कल्पना मस्तिष्क में कर ली जाती है और बाद में उसे व्यवहार में लाने का प्रयास किया जाता है, जैसे—प्लेटो ने अपने आदर्श राज्य में दार्शनिक शासक की कल्पना की। इस प्रकार की चिन्तन प्रक्रिया आदर्शी सिद्धान्तों के निर्माण में तो सहायक होती है परन्तु ठोस तथ्यों से इसका विशेष सम्बन्ध नहीं होता।

2. आनुभविक सिद्धान्त (Empirical Theory)—इसमें अध्ययनकर्ता स्वयं राजनीतिक व्यवहार के क्षेत्र में जाकर राजनीतिक व्यवहार का अवलोकन करके सिद्धान्तों का निर्माण करता है। इसके लिए वह आँकड़े एकत्रित करके ठोस तथ्यों का सहारा लेता है। इन सिद्धान्तों का सीधा सम्बन्ध राजनीतिक वास्तविकता से होता है।

परम्परावादी राजनीतिक सिद्धान्त की प्रकृति (The Nature of Traditional Political Theory)—परम्परावादी राजनीतिक सिद्धान्त में मूल्यों, आदर्शों को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया। प्लेटो का न्याय सिद्धान्त, लॉक का प्राकृतिक कानून, रूसो का सामान्य इच्छा इसी प्रकार के उदाहरण हैं। ये विचारक मूल्य और मान्यताओं को इतना महत्त्व देते हैं कि इनके राजनीतिक सिद्धान्त और राजनीति विज्ञान पर्यायवाची हो गये हैं।

आधुनिक राजनीतिक सिद्धान्त की प्रकृति (The Nature of Modern Political Theory)—आधुनिक राजनीतिक सिद्धान्त अनुभववाद और वैज्ञानिक अध्ययन पद्धति पर आधारित है। यह मानव व्यवहार के यथार्थ अध्ययन को महत्त्व देता है। यह मूल्यों के स्थान पर तथ्यों को अपने अध्ययन का आधार मानता है। द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् व्यवहारवादी अध्ययन इसी का उदाहरण है। इसके प्रमुख विद्वान चार्ल्स मेरियम, डेविड ईस्टन, हेराल्ड लासवेल, रॉबर्ट डहल, आमण्ड और पावेल तथा कार्ल ड्यूश आदि हैं।

राजनीतिक दर्शन (Political Philosophy)—मनुष्य के जीवन-यापन के लिए प्रथम प्रयास के साथ राजनीति दर्शन का जन्म हुआ। हिन्दुओं के अनेक ग्रन्थों; जैसे—अथर्ववेद, यजुर्वेद, अग्निपुराण, महाभारत, मनुस्मृति, कौटिल्य का अर्थशास्त्र, शुक्रनीति आदि में राजनीतिक दर्शन मिलता है। पाश्चात्य विचारकों प्लेटो, अरस्तू, सेन्ट थॉमस एक्वीनास, हीगल, ग्रीन, मार्क्स आदि ने भी राजनीतिक दर्शन की रचना की।

राजनीतिक दर्शन राज्य के मूलभूत सिद्धान्तों और उसकी सारभूत विशिष्टताओं पर विचार करता है। राजनीति दर्शन दो शब्दों से मिलकर बना है—राजनीति और दर्शन। दर्शन का अर्थ है—समग्रता का ज्ञान (The Knowledge of the Wholeness)। इसका प्रतिपाद्य विषय सम्पूर्ण विश्व है जिसका यह मौलिक तथा व्यापक विवेचन करता है। राज्य विश्व का एक अंग है। राज्य से सम्बन्धित इस दर्शन को राजनीतिक दर्शन कहते हैं।

जे. एच. हॉलोवैल ने ठीक कहा है कि राजनीतिक दर्शन का सम्बन्ध राजनीतिक संस्थाओं से उतना नहीं है, जितना इन संस्थाओं में निहित विचारों और आकांक्षाओं से। इसके शब्दों में, "राजनीतिक दर्शन की दिलचस्पी इसमें नहीं है कि तथ्य कैसे घटित होते हैं, जितनी इसमें कि क्या घटित होता है और क्यों घटित होता है।"[1]

राजनीतिक दर्शन की व्याख्या करते हुए **आर. एन. गिलक्राइस्ट** ने कहा है कि, "राजनीतिक दर्शन राज्य की मूलभूत समस्याओं नागरिकता, अधिकार और कर्तव्य के प्रश्नों तथा राजनीतिक आदर्शों का विवेचन करता है।" राजनीतिक दर्शन राज्य की सिर्फ व्याख्या ही नहीं करता बल्कि यह राज्य में अस्तित्व की व्याख्या करने का प्रयास करता है। यह संस्थाओं का विवेचन ही नहीं करता बल्कि उनमें सन्निहित विचारों तथा आदर्शों का भी विवेचन करता है।

राजनीति विज्ञान और राजनीतिक सिद्धान्त में अन्तर

राजनीतिक सिद्धान्त की अपेक्षा राजनीति विज्ञान अधिक व्यापक विषय है। राजनीति विज्ञान में सिद्धान्त और व्यवहार दोनों आ जाते हैं। राजनीति विज्ञान में राजनीतिक सिद्धान्त, राजनीतिक चिन्तन, व्यावहारिक राजनीति, सरकार, राजनीतिक संगठन, कल्पनात्मक सिद्धान्त और अनुभवात्मक सिद्धान्त आ जाते हैं जबकि राजनीतिक सिद्धान्त में आनुभविक सिद्धान्त ही आते हैं। इस प्रकार राजनीति विज्ञान राजनीतिक सिद्धान्त की अपेक्षा अधिक व्यापक है।

राजनीतिक सिद्धान्त और राजनीतिक दर्शन में अन्तर

डेविड ईस्टन का मत है कि केवल अनुभववादी वैज्ञानिक राजनीतिक सिद्धान्त को ही सही अर्थों में राजनीतिक सिद्धान्त कहा जा सकता है। राजनीतिक सिद्धान्त और राजनीतिक दर्शन में निम्नलिखित अन्तर है—

1. राजनीतिक दर्शन का मूल तत्व आदर्शवादिता होता है जबकि राजनीतिक सिद्धान्त का मूल तत्व व्यवहारपरकता और यथार्थवादिता है।

2. राजनीतिक दर्शन में मूल्यों को अधिक महत्त्व दिया जाता है जबकि राजनीतिक सिद्धान्त में मूल्यों को महत्त्व कम दिया जाता है।

3. राजनीतिक दर्शन की अध्ययन पद्धति निगमनात्मक और दार्शनिक है उसमें कल्पना, तर्क-चिन्तन, मनन का महत्त्व होता है जबकि राजनीतिक सिद्धान्त की अध्ययन पद्धति आनुभविक वैज्ञानिकता है जो पर्यवेक्षण, मापन, परीक्षण, सर्वेक्षण, प्रश्नावली, साक्षात्कार, जनमत, मतदान आदि पर आधारित है।

राजनीतिक दर्शन और राजनीतिक सिद्धान्त दोनों ही महत्वपूर्ण हैं, आवश्यकता है—दोनों में सही सामंजस्य की। डहल के शब्दों में, "आवश्यकता इस बात की है कि पारम्परिक चिन्तन प्रधान राजनीतिक दर्शन और वैज्ञानिक पद्धति पर आधारित राजनीतिक सिद्धान्त के बीच सह-अस्तित्व की स्थिति को सही और सम्पूर्ण अर्थों में अपनाया जाये।"

---

1 "It is not so much interested in how things occur as it is in what occurs and why."
—J. H. Hallowell

3

राजनीतिक सिद्धान्त : प्रकृति, महत्त्व, परम्परावाद, अनुभववाद (आधुनिकवाद) तथा ह्रास

[POLITICAL THEORY : NATURE, SIGNIFICANCE, TRADITIONAL, EMPIRICISM (MODERNISM) AND DECLINE]

"राजनीतिक सिद्धान्त राजनीति के संचालन के साथ-साथ राजनीतिक अध्ययन के लिए भी उपयोगी होता है।" —डब्ल्यू. टी. ब्लूम

परिचय (Introduction)—राजनीतिक सिद्धान्त राजनीतिशास्त्र की सबसे अधिक सरल और सबसे अधिक जटिल धारणाओं में से एक है। प्रत्येक व्यक्ति स्वयं तथा दूसरों की सहायता से सिद्धान्त का निर्माण करता है और उसके आधार पर कार्य करता है। इसका अभिप्राय है कि प्रत्येक व्यक्ति वस्तुओं, प्राणियों, समूहों, घटनाओं आदि को देखता है तथा उनके विषय में कुछ धारणाएँ, निष्कर्ष, नियम आदि निकाल लेता है। दो-चार बार अवलोकन करने के बाद ये धारणाएँ, निष्कर्ष आदि पक्के हो जाते हैं। सम्पूर्ण मानव समाज ऐसे सामान्य अनुमानों एवं निष्कर्षों के आधार पर कार्य करता है। यह अनुमानीकरण ही सिद्धान्त-निर्माण है।

राजनीतिक सिद्धान्त का अर्थ

[MEANING OF POLITICAL THEORIES]

राजनीतिक सिद्धान्त में सामान्यतया राजनीतिक का अर्थ है—'सार्वजनिक हित का विषय' और सिद्धान्त का अर्थ है—'सभ्य मानव जाति की प्रगति का उपकरण।' थ्योरी (Theory) शब्द ग्रीक भाषा के थ्योरिया (Theoria) से निकला है, जिसका अर्थ है—समझने की दृष्टि।

वस्तुतः सिद्धान्त ज्ञान के ऐसे निकाय को कहा जाता है जो यथार्थ विषयक तथ्यों से प्राप्त किया जाता है तथा उन्हें वह अर्थ और महत्व प्रदान करता है, जिसे अन्यथा वे प्राप्त नहीं करते। यह एक विश्लेषणात्मक युक्ति है जिसकी सहायता से तथ्यों की व्याख्या तथा उनके विषय में भविष्यवाणी की जा सकती है। संक्षेप में, सिद्धान्त सामान्यीकरणों या व्याख्यात्मक नियमों का सुगठित समुच्चय (Set) होता है, जो ज्ञान के किसी क्षेत्र की व्याख्या करने में सक्षम हो। वैसे तो सिद्धान्त विभिन्न प्रकार के होते हैं परन्तु यहाँ 'राजनीतिक सिद्धान्त' से तात्पर्य

राजनीतिक क्रियाओं या राजनीतिक व्यवस्था के उस सामान्य सिद्धान्त से है, जो उससे सम्बन्धित समस्त तथ्यों, प्राक्कल्पनाओं, सामान्यीकरणों आदि की व्याख्या करता है। ऐसे सिद्धान्तों का निर्माण राजनीतिक तथ्यों के वर्णन, वर्गीकरण, प्राक्कल्पना-परीक्षण एवं राजनीतिक व्यवहार के सम्बन्ध में परिकल्पनों आदि की स्थापना के द्वारा तथा पर्यवेक्षणीय अनुभव एवं वस्तुनिष्ठ आँकड़ों के सन्दर्भ में व्यवस्थित व्यवहार किया जाता है।

परिभाषा

[DEFINITION]

राजनीतिक सिद्धान्त की विभिन्न परिभाषाएँ निम्नलिखित हैं—

पोलसावी (Polsavi) के शब्दों में, "वैज्ञानिक सिद्धान्त सामान्यीकरणों के निगमनात्मक जाले के रूप में है जिससे ज्ञात घटनाओं के कुछ प्रकारों की व्याख्या या पूर्व कथन सम्भव हो।"

ईसाक (Isaac) के मतानुसार, "राजनीतिक सिद्धान्त सामान्यीकरण का समुच्चय (set) होता है। इसमें हमारे द्वारा सामान्यतः परिचित तथा परिचालनात्मक रूप से परिभाषित अवधारणाएँ पायी जाती हैं, इनके अतिरिक्त इसमें भी अधिक महत्त्वपूर्ण सैद्धान्तिक अवधारणाएँ पायी जाती हैं, जो यद्यपि पर्यवेक्षण से प्रत्यक्ष रूप से सम्बद्ध नहीं होतीं तथापि इन अवधारणाओं से जुड़ी होती हैं।"

मीहान (Meehan) के शब्दों में, "सिद्धान्त मूल रूप से एक विचारात्मक उपकरण है। इसके द्वारा राजनीतिक जीवन के तथ्यों को सुव्यवस्थित एवं क्रमबद्ध किया जाता है। इसके द्वारा पृथक् दिखायी देने वाली प्रेक्षणीय घटनाएँ एक साथ सुव्यवस्थित ढंग से परस्पर सम्बद्ध कर दी जाती हैं।"

मोरिस दुवर्जर (Morris Dubergor) के शब्दों में, "यह अवलोकन, प्रयोग और तुलना के परिणामों को एकरस बनाता है तथा घटनाओं के समूह के अन्तर्गत समझी व पहचानी जाने वाली सामग्री को सम्बद्ध व समन्वित ढंग से अभिव्यक्त करता है।"

कार्ल जे. पोपर (Karl J. Popper) के मतानुसार, "सिद्धान्त एक प्रकार का जाल है, जिससे जगत् को पकड़ा जा सकता है, ताकि उसको समझा जा सके। सिद्धान्त एक अनुभवपरक व्यवस्था के प्रारूप की अपने मन की आँख पर बनायी गयी रचना है।"

नोवुर्ड हैन्सन (Novourd Hanson) के शब्दों में, "यह प्रेक्षित सामग्री के विषय में बुद्धिगम्य, व्यवस्थित अवधारणात्मक प्रतिमान होता है।"

इन परिभाषाओं के विश्लेषण के आधार पर कहा जा सकता है कि राजनीतिक शासन, उसके रूपों तथा कार्यों का अध्ययन पूर्ण तत्वों के रूप में न करके, जब लोगों की आवश्यकताओं, आकांक्षाओं तथा मतों को ध्यान में रखकर किया जाता है तब उसे राजनीतिक सिद्धान्त कहा जाता है।

राजनीतिक सिद्धान्त का क्षेत्र

[SCOPE OF POLITICAL THEORY]

राजनीतिक सिद्धान्त के क्षेत्र को दो भागों में बाँटा जा सकता है—

Scanned with CamScanner

(1) **परम्परागत दृष्टिकोण**—परम्परागत दृष्टिकोण राजनीतिक सिद्धान्त शास्त्रीय आधार पर मूल्यों एवं लक्ष्यों को प्रमुख स्थान देता है। इसके साथ-साथ इसमें राज्यों व सरकार की उत्पत्ति, विकास, संगठन, प्रकार, राजनीतिक दल, राजनीतिक विचारधाराएँ, सरकारों और संविधानों का तुलनात्मक अध्ययन, अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध, राष्ट्रीय प्रशासन आदि का भी अध्ययन होता है।

(2) **आधुनिक दृष्टिकोण**—आधुनिक दृष्टिकोण के अनुसार राजनीतिक सिद्धान्त का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। संयुक्त राज्य अमरीका ने पूर्व प्रचलित उन उपक्षेत्रों के स्थान पर 1967 में 'अमरीकन पॉलिटिकल साइन्स एसोसिएशन' के अनुसार 27 उपक्षेत्र विकसित कर दिये थे। वहां इसके प्रतिपाद्य विषय—राजनीतिक मनुष्य और उसका व्यवहार, समूह, संस्थाएँ, प्रशासन, अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति सिद्धान्त, विचारवाद, शोध पद्धतियाँ, सांख्यिकी, सर्वेक्षण आदि हैं। आर्नोल्ड ब्रैख्ट (Arnold Brecht) ने International Encyclopaedia of Social Science, 1968 में 'राजनीतिक सिद्धान्त' शीर्षक के अन्तर्गत की जाने वाली इकाइयों को इस प्रकार गिनाया था—(i) समूह, (ii) सन्तुलन, (iii) शक्ति, नियन्त्रण एवं प्रभाव, (iv) क्रिया, (v) विशिष्ट वर्ग या अभिजन, (vi) चयन तथा विनिश्चय प्रक्रिया, (vii) पूर्वभासित प्रक्रिया, (viii) कार्य। इनके साथ अन्य कुछ अवधारणाएँ भी विकसित हो जाती हैं जो किसी उपक्षेत्र से सम्बन्धित न होकर समस्त समाज विज्ञानों से सम्बन्ध रखती हैं, जैसे—राजनीतिक संस्थाएँ, सरकार, न्याय, स्वतन्त्रता, समानता आदि। भारतीय विश्वविद्यालयों ने समाजशास्त्रीय प्रभाव के अन्तर्गत कुछ नवीन अवधारणाएँ, जैसे—समाजीकरण, राजनीतिक संस्कृति, राजनीतिक विकास, राजनीतिक संचार आदि को सम्मिलित किया है। कुछ अधिक विकसित विश्वविद्यालयों एवं विभागों ने पद्धति-विज्ञान एवं शोध प्रवृत्तियों को भी पाठ्यक्रम में सम्मिलित कर लिया है। वर्तमान में विज्ञानवाद पर अधिक बल दिया जाता है जिससे अध्ययन वस्तुनिष्ठ, आनुभविक, यथार्थीय, विश्वसनीय एवं सत्यापित हो सके।

राजनीतिक सिद्धान्त में निम्नलिखित विषयों का अध्ययन सम्मिलित किया जाता है—

(1) **राज्य व सरकार का अध्ययन** (Study of State and Government)—आधुनिक युग में कुछ विद्वान राजनीतिक सिद्धान्त को केवल राज्य का अध्ययन मानते हैं और कुछ के मतानुसार यह केवल सरकार का अध्ययन है। **ब्लुंट्शली** ने लिखा है, "राजनीतिक विज्ञान वह विज्ञान है जिसका सम्बन्ध राज्य से है, जो राज्य की आधारभूत स्थितियों, उसकी प्रकृति तथा विविध स्वरूप एवं विकास को समझने का प्रयत्न करता है।" **गार्नर** का कहना है, "राजनीति विज्ञान का प्रारम्भ और अन्त राज्य के साथ होता है।" इन दोनों परिभाषाओं में केवल राज्य पर बल दिया गया है, सरकार के विषय में कुछ नहीं बताया गया है।

(2) **मानव व्यवहार का अध्ययन** (Study of Human Behaviour)—राजनीतिक सिद्धान्त संस्थाओं के अध्ययन के विषय में बताता है, परन्तु आधुनिक राजनीतिक सिद्धान्त मनुष्य के राजनीतिक व्यवहार का अध्ययन करता है। उसकी दृष्टि में मानव का व्यवहार चालक-शक्ति के समान है। राजनीति के वास्तविक रूप के अध्ययन के लिए राज्य से दूर मानव व्यवहार का अध्ययन भी आवश्यक है। यह देन व्यवहारवादी क्रान्ति के द्वारा प्राप्त हुई है। इस दृष्टि से यह कहा जा सकता है कि वर्तमान काल में राजनीतिक सिद्धान्त का क्षेत्र अत्यधिक व्यापक हो गया है। अब केवल उसके मूल्य का ही अध्ययन नहीं होता वरन् व्यक्ति के राजनीतिक व्यवहार का भी अध्ययन किया जाता है।

(3) **समस्याओं तथा संघर्षों का अध्ययन** (Study of Problems and Conflicts)—मनुष्य की इच्छाओं तथा आवश्यकताओं का कोई पार नहीं है, परन्तु उनकी पूर्ति के साधन बहुत कम हैं। अतः समाज में विभिन्न प्रकार की समस्याएँ तथा संघर्ष उत्पन्न होते रहते हैं। **लिप्सन** ने लिखा है, "राजनीति निरन्तर विवाद की प्रक्रिया है।" इन संघर्षों तथा समस्याओं के निराकरण के लिए शक्ति की आवश्यकता पड़ती है। आधुनिक राजनीतिक सिद्धान्त के मनीषी इन संघर्षों को सुलझाने के लिए शक्ति तथा संगठन के विषय में ज्ञान प्राप्त करते हैं।

(4) **सामाजिक मूल्यों का अध्ययन** (Study of Social Values)—आधुनिक राजनीतिक सिद्धान्तों का कोई मूल्य नहीं है, परन्तु आजकल सामाजिक मूल्यों को मान्यता देने की बात सोची जाने लगी है। बाद के व्यवहारवादियों ने मूल्यों को अपने अध्ययन में स्थान देकर राजनीतिक सिद्धान्त को उपयोगी बनाने की ओर कदम बढ़ाये हैं।

(5) **राजनीतिक प्रक्रिया का अध्ययन** (Study of Political Process)—राजनीति केवल एक संस्था या संगठन नहीं है वरन् एक प्रक्रिया है। इसमें कार्यकरण में जो प्रक्रिया देखने को मिलती है उसका भी अध्ययन किया जाता है। राजनीति विज्ञान में सामान्य निर्वाचन, विधि के निर्माण, दलों की क्रियाविधि, अधिकारियों के पारस्परिक सम्बन्ध का भी अध्ययन किया जाता है।

(6) **नीतियों का अध्ययन** (Study of Policies)—आधुनिक काल में राजनीतिशास्त्रियों में डहल, ईस्टन तथा लासवेल का नामोल्लेख विशेष रूप से किया जाता है। इन विद्वानों ने राजनीतिक सिद्धान्त को शक्ति व क्रिया के अध्ययन के रूप में देखा है। इसके फलस्वरूप इस विषय की बातें तीव्र गति से परिवर्तित हुई हैं।

(7) **शक्ति का अध्ययन** (Study of Power)—मध्यकालीन राजनीतिक सिद्धान्त के विद्वानों ने शक्ति को राजनीति की केन्द्रीय अवधारणा में स्वीकार किया है। **रॉबर्ट डहल** ने उल्लेख किया है, "राजनीति शक्ति की तलाश है।" **मैक्स वेबर** ने कहा है, "राजनीति-शक्ति विभाजन में भाग लेने या उसे प्रभावित करने का संघर्ष है, चाहे वह राज्यों के मध्य हो या राज्यों के अन्दर समूहों के मध्य।" **लासवेल** ने कहा है, "राजनीति शक्ति को बनाने तथा भाग लेने का अध्ययन है।" **कैटलिन** ने भी माना है कि शक्ति केवल चालू परिकल्पना (operational hypothesis) है।

(8) **राजनीतिक सिद्धान्त के नवीन उपक्षेत्र** (New Sub-fields of Political Theory)—राष्ट्रीय राजनीति का पुराना क्षेत्र एक प्रकार से समाप्त-सा हो गया है। अब उसका स्थान कार्यात्मक विषयों ने ले लिया है। उदाहरण के लिए—कार्यपालिका के अध्ययन के साथ-साथ राजनीतिक नेतृत्व का भी अध्ययन किया जाता है। इसी प्रकार, न्यायपालिका, व्यवस्थापिका तथा शासन के साथ-साथ इन क्षेत्रों के व्यवहार के बारे में भी ज्ञान प्राप्त किया जाता है। अब राष्ट्रीय राजनीति और शासन के अध्ययन के सम्बन्ध में अनेक तथा विभिन्न प्रकार के व्यवहारों से सम्बन्धित नये विषय राजनीतिक सिद्धान्त के अंग बन गये हैं।

अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति से सम्बन्धित सैद्धान्तिक क्षेत्र में भी इसी प्रकार परिवर्तन आया है। प्रारम्भ में कुछ अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं, देशों की परराष्ट्र नीतियों, राजनीति का अध्ययन आदि इस क्षेत्र के अन्तर्गत किया जाता था, परन्तु अब व्यवहारवाद के प्रभाव के अन्तर्गत अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिक पद्धति की अवधारणा का विकास हुआ है। **मॉर्गेन्थो** ने शक्ति के द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय

Scanned with CamScanner

राजनीति का विश्लेषण किया है। इस प्रकार, आधुनिक अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति अनेक प्रतिमानों के सहारे इसके व्यापक पहलुओं का अध्ययन करती है।

राजनीतिक सिद्धान्त की महत्ता या उपयोगिता
[IMPORTANCE OR UTILITY OF POLITICAL THEORY]

यूजीन जे. मीहान (Eugene J. Meehan) ने राजनीतिक सिद्धान्त की महत्ता के विषय में लिखा है, "अपने आदर्श रूप में सिद्धान्त एक निर्माण की प्रक्रिया है तथा एक कला की कृति है। अच्छे सिद्धान्त सौन्दर्य की वस्तुएं व सौन्दर्य की मूल्य होती है—उर्वर, विचारोत्तेजक, सरल, उत्पादक व मनोहर।" इस दृष्टि से मानवीय जीवन में सिद्धान्तों का अत्यधिक महत्त्व है, क्योंकि मनुष्य अपने कार्यों को पूर्ण करने के लिए जिन सामान्य विचारों का निरूपण करता है, उन विचारों को सिद्धान्त द्वारा व्यवस्थित किया जाता है।

राजनीतिक सिद्धान्तों द्वारा एक आदर्श समाज की रूपरेखा निर्मित होती है। यही कारण है कि जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में राजनीतिक सिद्धान्तों का बहुत महत्त्व है। राजनीतिक सिद्धान्त राज्य के समक्ष राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक तथा अन्य समस्याओं का समाधान करने में पूर्ण हैं। इस सम्बन्ध में जी. डी. एच. कोल ने कहा है, "हम चाहे राजनीति की चिन्ता न करें, राजनीति हमारी चिन्ता अवश्य करती है। आधुनिक काल में जिन अनेक राजनीतिक सिद्धान्तों व मान्यताओं का विकास हुआ है, उन्होंने परम्परागत राजनीतिक विचारों को समूल ध्वस्त कर दिया है।"

इस प्रकार, राजनीतिक सिद्धान्त के महत्त्व का अध्ययन निम्नांकित रूप में किया जा सकता है—

(1) **वास्तविकता का ज्ञान** (Knowledge of Reality)—राजनीतिक सिद्धान्त द्वारा हमें वास्तविकता के विषय में जानकारी प्राप्त होती है। ये सिद्धान्त अपनी वैज्ञानिक वस्तु के द्वारा अनुशासन में एकरूपता, सम्बद्धता तथा संगति के तत्त्वों का विकास करते हैं। इस प्रक्रिया से अनुशासनात्मक-स्तर उन्नततर बनता है। उससे अनेक तथ्यों और घटनाओं को समझने और चयन करने में सहायता मिलती है।

(2) **वैज्ञानिकता का प्रयत्न** (Scientific Effort)—अपनी वैज्ञानिकता के द्वारा सिद्धान्त राजनीति विज्ञान को सामान्यीकरण पर आधारित करता है तथा उसे राजनीतिक व्यवहार में लाने का प्रयत्न करता है। उसके लिए नवीन खोजें करता है और नये सिद्धान्तों का निर्माण करता है। इन्हीं सिद्धान्तों के आधार पर वैज्ञानिक घटनाओं के सम्बन्ध में भविष्यवाणी की जाती है।

(3) **अनुशासन बनाये रखना** (To Keep Discipline)—राजनीति विज्ञान का एकीकरण, शोध विभाजन आदि राजनीतिक सिद्धान्त पर ही आश्रित रहता है, क्योंकि इससे व्यवहार में अनुशासन बनाये रखने में सहायता मिलती है।

(4) **अवधारणात्मक भावना** (Conceptual Feeling)—राजनीतिक सिद्धान्त तथ्य-संग्रह एवं शोध की प्रेरणा और दिशा प्रदान करता है। ईस्टन ने एक अवधारणात्मक विचारबन्ध (framework) के रूप में सिद्धान्त का महत्त्व बताया है।

ईस्टन (Easton) ने राजनीतिक सिद्धान्त की अवधारणा की भावना के विषय में लिखा है, "राजनीतिक सिद्धान्त की अवधारणात्मक विचारबद्धता के संग्रह तथा शोध से तथ्य की प्राप्ति की प्रेरणा मिलती है। उसे एक नयी दिशा प्राप्त होती है। वह एक चलनी के रूप में परीक्षित तथ्यों का चयन करने के लिए उपयोगी रहता है। यह न एक दिशासूचक की तरह दिशा-निर्देश करता है वरन् एक मापक के रूप में किसी विशिष्ट समय में विज्ञान द्वारा प्राप्त विकास की अवस्था पर भी प्रकाश डालता है।"

(5) **मानवीय प्रगति में सहायक** (Helpful in the Human Progress)—आज के युग में विज्ञान की प्रगति की ओर अधिक ध्यान दिया जाता है। इस दृष्टि से राजनीतिक सिद्धान्त का महत्त्व बहुत बढ़ गया है, क्योंकि इसके आधार पर अनुभवों को संक्षिप्त करने तथा उससे आगे की समस्याओं का अनुमान लगाने में सहायता मिलती है। आधुनिक युग में राजनीतिक सिद्धान्त के महत्त्व के विषय में **हेन्स जे. मॉर्गेन्थो** (Hans J. Morgenthau) ने उल्लेख किया है, "परमाणु युग में शक्ति पर नियन्त्रण रखने का मार्गदर्शन आनुभविक राजसिद्धान्त द्वारा प्राप्त होता है।" इस प्रकार यह सत्य है कि राजनीतिक सिद्धान्त मानव समाज की राजनीतिक प्रगति, संवैधानिक तथा वैधानिक प्रगति तथा सामाजिक प्रगति में अनिवार्य सहायता प्रदान करता है।

(6) **राजनीतिक घटनाओं तथा मूल्यों में सन्तुलन** (Equilibrium amongest Political Incidents and Human Methods)—राजनीतिक सिद्धान्त राजनीतिक वास्तविकताओं, घटनाओं, अध्ययन-प्रणालियों एवं मानवीय मूल्यों में सन्तुलन स्थापित करता है। यह सम्बन्धित प्रश्नों को स्पष्ट भी करता है।

(7) **राजनीतिज्ञों तथा प्रशासनिक अधिकारियों के लिए महत्त्व** (Importance to Politicians and Administrators)—राजनीतिक सिद्धान्त वास्तविक राजनीति के सभी रूपों का पूर्ण रूप सबके समक्ष रखता है। इस कारण इसका राजनीतिज्ञों, राजनयिकों, राजनेताओं, प्रशासकों तथा नागरिकों के लिए विशेष महत्त्व है, जो राजनीतिज्ञ कहते हैं कि राजनीतिक सिद्धान्त आडम्बर तथा मिथ्या है, वास्तव में वे किसी भी राजनीतिक सिद्धान्त का उपयोग नहीं करते हैं। वे राजनीति की धारणाओं को बनाते हैं और परिकल्पना करके उनमें सुधार करते हैं।

(8) **समस्याओं का समाधान करना** (To Solve the Problems)—राजनीतिक सिद्धान्त राजनीति से सम्बन्धित समस्याओं का समाधान करते हैं। मनुष्य पर नियन्त्रण तभी हो पाता है जब सम्प्रभुता, राष्ट्रवादिता, प्रजातिवाद तथा युद्ध आदि के सिद्धान्त सही होते हैं। यदि हमें अनिवार्यता तथ्यों का चुनाव करना होता है, तो सिद्धान्तों की बहुत आवश्यकता होती है।

(9) **औचित्यपूर्णता सिद्ध करना** (To prove Legitimacy)—जनता की दृष्टि में शासन प्रणाली एवं शासकों को औचित्यपूर्णता प्रदान करने में सिद्धान्त एक महत्त्वपूर्ण उपकरण होते हैं, चाहे वे राष्ट्रवाद के नाम पर हों या राजनीतिक विकास अथवा समाजवाद के नाम पर। विशिष्ट वर्ग प्रायः अपने प्रभुत्व को बनाये रखने के लिए इसी उपकरण का सहारा लेता है।

(10) **राजनीतिक सिद्धान्त के कार्य** (Functions of the Political Theory)—रॉबर्ट ए. डहल ने राजनीतिक सिद्धान्तों के अनेक राजनीतिक, मनोवैज्ञानिक और नैतिक कार्य बताये हैं। राजनीतिक दृष्टि से ये शासन-व्यवस्थाओं को औचित्यीकरण प्रदान करते हैं किन्तु मनोवैज्ञानिक दृष्टि से इनका व्यक्ति के लिए बड़ा महत्त्व है। ये व्यक्ति को मानकीय, प्रेक्षपणीय (Projective) ज्ञानात्मक तथा नैतिक दिशाएं प्रदान करते हैं। वह इनके सहारे आगे बढ़कर असाधारण कार्य करने लगता है।

Scanned with CamScanner

राजनीतिक सिद्धान्त के विषय में मेयो (Mayo) ने लिखा है, "राजनीतिक सिद्धान्त सम्पूर्ण व्यवस्था के क्रियाशील एवं व्यावहारिक विशेषताओं की व्याख्या करने वाला होना चाहिए।" इस की बात यह है कि राजनीतिक सिद्धान्त की अपेक्षा ऐसी होनी चाहिए कि राजनीति सम्बन्धी तथ्यों तथा घटनाओं की विश्वसनीय व्याख्या करने में वह पूर्ण सफलता प्राप्त कर सके।

परम्परागत राजनीतिक सिद्धान्तों का विकास

[GROWTH OF TRADITIONAL POLITICAL THEORIES]

मानवीय जीवन में राजनीतिक संस्थाओं, सम्बन्धों, गतिविधियों आदि का प्राचीनकाल से सम्बन्ध रहा है। यद्यपि प्राचीनकाल की यह संस्कृति आधुनिक काल के सिद्धान्तों, प्राकृतिक साधारण तथा राजनीति में देखने को नहीं मिलती है तथा यह पृथक् रूप में अपनी पहचान बनाये हुए है। इसका अध्ययन राजनीतिक सिद्धान्तों के अध्ययन के साथ-साथ करना होता है। विलियम सी. बाम (William C. Baum) ने लिखा है, "परम्परागत राजनीतिक सिद्धान्तों में व्यवहारवादी क्रान्ति से पूर्व प्रचलित विचार-सम्बन्धी राजनीतिक संस्थाओं के अध्ययन, विचारधाराओं तथा राजनीतिक विचारों के संश्लेषण को सम्मिलित किया जाता है।"

परम्परागत राजनीतिक सिद्धान्तों के विकास में निम्नलिखित विचारधाराएँ तथा विकास के सिद्धान्तों का अध्ययन किया जाता है।

I. प्रारम्भिक विकास (Early Development)

प्रारम्भिक राजनीतिक सिद्धान्तों के विकास का क्रम निम्नलिखित है—

(1) **यूनानी राजनीतिक चिन्तन** (Greek Political Thought)—यूनानी राजनीतिक चिन्तन के विषय में यद्यपि प्रारम्भिक अवस्था का ज्ञान नहीं होता है तथापि उस युग में शिक्षा, न्याय, आदर्श, शासन-व्यवस्था, संविधान, विधि आदि सभी प्रकार के राजनीतिक विषयों के बारे में विचार प्रस्तुत किया गया था। इस युग में प्रतिनिधि दार्शनिक सोफिस्ट सुकरात, प्लेटो तथा अरस्तू थे। इन सबने यूनानी राजदर्शन को समृद्ध करने में पर्याप्त परिश्रम किया। राजनीतिक सिद्धान्तों के क्षेत्र में यूनानी राजदर्शन का वर्णन निम्न रूप में किया जा सकता है—

(i) **मनुष्य सामाजिक प्राणी के रूप में** (Man as a Social being)—यूनानी राजदर्शन ने इस बात को दर्शाया है कि "मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है।" इसके साथ-साथ यह भी स्पष्ट किया गया है कि मनुष्य का स्वभाव समाज में रहने के लिए बाध्य है, क्योंकि वह समाज में जन्म लेता है और समाज में ही उसकी मृत्यु होती है। समाज मानव के जन्म के साथ-साथ उसके अस्तित्व के विकास के लिए भी आवश्यक है। इस सत्य को नहीं भुलाया जा सकता।

(ii) **नगर-राज्य की संकल्पना** (Conception of City-State)—यूनानी राजदर्शन में नगर-राज्यों की संकल्पना को भी दर्शाया गया है। प्राचीनकाल में यूनान के प्रत्येक नगर को एक 'राज्य' कहा जाता था तथा उसकी मान्यता एक सामाजिक इकाई के रूप में थी। यह स्वशासित तथा आत्म-निर्भर था तथा सामाजिक इकाई के रूप में इसे स्वीकार किया जाता था। मनुष्य का प्रमुख उद्देश्य यही था कि हर प्रकार से समाज का कल्याण हो।

(2) **प्लेटो का राजदर्शन** (Platonic Philosophy)—प्लेटो ने अपने राजदर्शन को अपने गुरु सुकरात के जीवन-दर्शन के अनुसार प्रस्तुत किया था। राजदर्शन के लिए उसने रिपब्लिक (Republic) नामक प्रसिद्ध रचना लिखी। उसे कभी ने शिक्षाशास्त्र की अनुपम रचना के रूप में व्यक्त किया। प्लेटो की दृष्टि में राजदर्शन का प्रमुख अंग आदर्श राज्य (Ideal State) था। इसके अतिरिक्त, उसने शिक्षा, न्याय तथा स्त्रियों के साम्यवाद के विषय में भी मौलिक तथा महत्त्वपूर्ण विचार व्यक्त किये थे। प्लेटो का कहना था, "जब तक दार्शनिक राजा और राजा दार्शनिक होंगे, तब तक विश्व से बुराइयाँ दूर नहीं होंगी।"

(3) **अरस्तू का राजदर्शन** (Philosophy of Aristotle)—अरस्तू एक ऐसा दार्शनिक था जिसे आदर्शवादी तथा व्यवहारवादी कहा जाता था। उसने अपने युग के राजदर्शन को वैज्ञानिक आधार पर व्यक्त किया। उसके अनुसार, समस्त प्रशासनिक प्रणालियाँ, जैसे—एकतन्त्र, कुलीनतन्त्र, जनतन्त्र, भ्रष्टतन्त्र, आततायी तन्त्र का वर्गीकरण तथा राजसत्ता, राज्य व व्यक्ति के सम्बन्ध व्यावहारिकता पर आधारित हैं। राजदर्शन में वैज्ञानिकता को लाने वाला वह एक महान् दार्शनिक था। अतः अरस्तू के राजनीतिक दर्शन में आधुनिक व्यवहारवाद, व्यवस्था सिद्धान्त, वैज्ञानिक प्रणाली आदि के विचारों का अध्ययन किया जा सकता है।

उपर्युक्त राजनीतिक दार्शनिकों के सम्बन्ध में आधुनिक विद्वानों ने भी अपने मतानुसार विचार व्यक्त किये हैं। **फोस्टर** (Foster) ने लिखा है, "अरस्तू का राजनीति के ऊपर अपना ग्रन्थ ठीक इसी प्रकार की व्यावहारिक बुद्धि की कृति है। यह एक शासक के लिए निर्देशक है। ऐसा प्रतीत होता है कि यूनानी राज्यों के सामूहिक राजनीतिक अनुभव का सार उसमें निहित है।"

यदि गम्भीरता से विचार किया जाये तो पता चलता है कि राजनीति को एक पृथक् शास्त्र के रूप में प्रस्तुत करने का कार्य अरस्तू ने किया है, प्लेटो ने नहीं। प्रो. जे. पी. सूद (Prof. J. P. Suda) ने उल्लेख किया है, "समस्त संविधानवाद का अरस्तू जनक हो गया है।"

II. एपीक्यूरियन एवं स्टोइक विचारधारा (Epicurian and Stoic Thoughts)

अरस्तू के पश्चात् यूनानी राजनीतिक चिन्तन की विचारधारा नकारात्मक स्वभाव की ओर बढ़ गयी। इसमें व्यक्त किया गया कि सुन्दर जीवन के लिए राजनीतिक चिन्तन की आवश्यकता नहीं है। इस प्रकार यूनानी राजदर्शन की अनेक विशेषताओं का अध्ययन किया जा सकता है—

1. जीवन का लक्ष्य अत्यधिक आनन्द में समाहित है।
2. धर्म से घृणा करनी चाहिए।
3. आकांक्षाओं की ओर नहीं बढ़ना चाहिए।
4. राजनीतिक जीवन के प्रति उदासीनता ठीक है।
5. राज्य की उत्पत्ति सामाजिक समझौते के अनुरूप होनी चाहिए।
6. उपयोगितावादी विचारों को महत्त्व देना चाहिए।
7. न्याय के सम्बन्ध में सामाजिक समझौते जैसे विचार होने चाहिए।

Scanned with CamScanner

III. रोमन राजदर्शन (Roman Philosophy)

जब यूनानी राजदर्शन द्वारा राजनीतिक सिद्धान्तों की नींव को सुदृढ़ बना दिया गया तो रोमन राजदर्शन द्वारा राजनीतिक विचारों के इतिहास को आगे बढ़ाने के विषय में विचार किया गया। इस सम्बन्ध में **मैकल्वेन** (Maclwain) ने लिखा है, "यदि विधि के क्षेत्र में से रोमनों का योगदान हटा दिया जाये तो राजनीतिक सिद्धान्त के इतिहास में रोम का योगदान शून्य रह जायेगा।" इस युग के प्रतिनिधि विचारकों में **पोलिबियस** (Polibious), **सिसरो** (Cicero) तथा **सेनेका** (Seneca) अधिक प्रसिद्ध हैं। इस युग के रोमन राजदर्शन की प्रमुख देन थी—

1. रोम कानून का धारणात्मक विचार।
2. विश्व-नागरिकता तथा विश्व-बन्धुत्व की भावना।
3. यूनानी विचारों को शुद्ध करना।
4. मानव को वैधानिक अधिकार प्रदान करना।
5. स्थानीय शासन को महत्व प्रदान करना।
6. लोकप्रिय सार्वभौमिकता का विचार प्रदान करना।
7. राज्य को जनता की सहमति पर आधारित करना।
8. रोमन इम्पीरियम का विचार रखना।

इस प्रकार, रोमन दर्शन ने परम्परागत राजनीतिक सिद्धान्तों को जन्म देने तथा उनका विकास करने में विशिष्ट योगदान दिया है।

IV. ईसाइयत राजनीतिक विचारधारा (Christian Political Thought)

रोमन साम्राज्य के पतन के उपरान्त ईसाइयत की शक्ति में वृद्धि होने लगी। इस शक्ति ने सम्पूर्ण मध्यकालीन विचारधारा को प्रभावित किया। इसका सर्वाधिक प्रभाव यह हुआ कि पोप की सत्ता को अच्छा समझा जाने लगा। अब चर्च का मान बढ़ गया और संगठन का स्वरूप केन्द्रीकरण की ओर बढ़ गया। धर्म ने राजनीति को अपने अंक में समेट लिया। **क्रिश्चियन डान** (Christian Dawn) ने लिखा है, "सातवीं शताब्दी तक पोप राजनीतिक कार्यों में भाग लेने लगा। वास्तव में, वह राजनीतिक प्रभुता के ऊपर था। रोम का चर्च भी रोम साम्राज्य की भाँति बन गया।"

ईसाइयत की राजनीतिक विचारधारा के राजनीतिक प्रभावों का अध्ययन निम्नलिखित रूप में किया जा सकता है—

1. ईसाइयत ने राज्य की वास्तविकता को सिद्ध करते हुए बताया कि राज्य ईश्वर प्रदत्त है।
2. ईसा मसीह ने यह शिक्षा दी कि मनुष्यों को धन संग्रह की ओर नहीं बढ़ना चाहिए। सम्पत्ति को निर्धनों में बाँट देना चाहिए।
3. दास प्रथा को समाप्त किया जाये तथा उनके साथ अच्छा व्यवहार करना चाहिए।
4. दैवी नियमों को मानना तथा राज्य के नियमों को प्राकृतिक नियमों के रूप में स्वीकार करना व्यक्ति का परम धर्म है।

5. राज्य का कार्य राज्य करे तथा धार्मिक कार्य चर्च करे। दोनों को अपने-अपने क्षेत्र में कार्यों का सम्पादन मनोयोग के साथ करना चाहिए। चर्च तथा राज्य की अलग-अलग धारणा के फलस्वरूप राजनीतिक चिन्तन का स्वरूप परिवर्तित हुआ।

परम्परागत राजनीतिक सिद्धान्तों की प्रमुख विशेषताएँ

[MAIN CHARACTERISTICS OF TRADITIONAL POLITICAL THEORY]

परम्परागत राजनीतिक सिद्धान्तों की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं—

(1) **विषय-सामग्री की रूढ़िवादिता** (Traditional in Subject-matter)—परम्परागत राजनीतिक सिद्धान्त में विषय-सामग्री की रूढ़िवादिता पायी जाती है। इस सिद्धान्त में प्रायः सभी विचारकों ने अपने पृथक्-पृथक् अध्ययन का विषय-क्षेत्र बना लिया है। इसके अन्तर्गत राज्य सरकार, राजनीतिक संस्थाएँ, राज्य के लक्ष्य, न्यायप्रियता, लोककल्याण, राज्य की उत्पत्ति की स्थापना तथा समाज की बुराइयों को दूर करने की बातें ही बतायी जाती हैं। इसमें न तो कोई अन्तर पाया जाता है और न नवीनता। प्राचीन यूनानी राजदर्शन में आधुनिक राजदर्शन का सर्जक ह्यूम से लेकर बर्क तक सभी ने इन्हीं विषयों पर अपने विचार प्रकट किये हैं, परन्तु आधुनिक काल में सभी प्रकार की राजनीति के अध्ययन पर विचार किया जाता है।

(2) **विषय की विशेषता का अभाव** (Lack of Subjectivity)—विभिन्न ग्रन्थों में जो विषय-सामग्री लिखी गयी है उसका विभाजन करना अत्यधिक कठिन है; उदाहरण के लिए—प्लेटो द्वारा लिखित 'रिपब्लिक' को ले सकते हैं। उसके विषय में यह निष्कर्ष निकालना अत्यधिक कठिन है कि उसको किस विषय के अन्तर्गत रखा जाये। इसका प्रमुख कारण यह है कि प्रस्तुत पुस्तक में जीवन के समस्त विषयों, कार्यों तथा घटनाओं का वर्णन किया गया है। यही कारण है कि रिपब्लिक को राजनीतिशास्त्र, अर्थशास्त्र, शिक्षाशास्त्र, मनोविज्ञान तथा नीतिशास्त्र आदि विषयों की उत्कृष्ट रचना माना जाता है। इसी हेतु कहा जाता है कि राजनीतिक सिद्धान्त में स्वायत्तता तथा विशिष्टता का अभाव है।

(3) **वैज्ञानिक प्रणाली के प्रयोग का अभाव** (Lack of Using the Scientific Method)—परम्परागत राजनीतिक सिद्धान्तों के विभिन्न अंगों में गणितीय परिमापन की वैज्ञानिक प्रणाली का प्रयोग नहीं हुआ है। यह सम्पूर्ण पद्धति अनुभव पर आधारित है। वैसे अरस्तू की अध्ययन-पद्धति को मनोवैज्ञानिक कहा जाता है, परन्तु उसे तुलनात्मक पद्धति के साथ-साथ अतीत के संचित अनुभव पर आधारित माना गया है। यही कारण है कि उसमें आधुनिक युग के समान वैज्ञानिक प्रणाली का अभाव है।

(4) **समकालीन समस्याओं के समाधान का उद्देश्य** (Aim to Solve Contemporary Problems)—प्लेटो, अरस्तू आदि ने समकालीन समस्याओं के समाधान को ही उद्देश्य बनाया है।

(5) **तार्किक तथा निगमनात्मक प्रणाली का प्रयोग** (Use of Logical and Deductive Method)—परम्परागत सिद्धान्तों में विद्वानों ने निगमनात्मक तार्किक प्रणाली का प्रयोग किया है। यद्यपि प्लेटो ने आगमनात्मक तथा निगमनात्मक दोनों प्रणालियों का समय-समय पर पालन किया था, परन्तु उसके तर्क द्वारा सत्यापित निगमनात्मक प्रणाली का ही प्रयोग किया गया था। अरस्तू ने एक स्थान पर वैज्ञानिक प्रणाली का प्रयोग अवश्य किया था, परन्तु उसने जिस विधि का प्रयोग किया है वह वास्तव में निगमनात्मक है।

Scanned with CamScanner

इस प्रकार विषय-सामग्री की दृष्टि से उपर्युक्त सभी विद्वानों के विचारकों ने व्यक्तिवादिता का ही सहारा लिया है।

आधुनिक राजनीतिक सिद्धान्त का विकास

[GROWTH OF MODERN POLITICAL THEORY]

डेविड ईस्टन, रॉबर्ट डहल, कैटलिन, मौर्गन, लासवेल आदि विद्वानों ने अमरीका में राजनीति सिद्धान्त पर नवीन दृष्टिकोणों से नयी दिशाओं का अध्ययन किया है। जिसके परिणामस्वरूप आधुनिक युग में नवीन विचारधारायें निकली हैं। इनके कारण राजनीतिक सिद्धान्त के विकास को समझने में पर्याप्त सहायता मिली है। इस विचारधारा के अन्य समर्थक विद्वान जे. डब्ल्यू. कौम, जेरमी बेन्थम, जॉन ऑस्टिन आदि हैं, जिन्होंने राजनीति विज्ञान को नैतिकता की श्रेणी में रखा है। इन्होंने आधुनिक राजनीतिक सिद्धान्त के निर्माण तथा विकास में महत्वपूर्ण भूमिका भी निभायी है।

राजनीतिक सिद्धान्त के विकास को ऐतिहासिक दृष्टि से तीन कालों में विभक्त किया जा सकता है, जो निम्नवत् है—

(1) **प्रारम्भ से 19वीं शताब्दी तक** (From beginning to 19th Century)—इस प्रारम्भिक काल में राजनीति सिद्धान्त के प्रारम्भ से 19वीं शताब्दी तक के काल का अध्ययन किया जाता है। इसे परम्परावादी काल (Traditional Period) भी कहा जाता है। इस काल में राजनीतिज्ञों ने अपने विचारानुकूल सिद्धान्त की रचना की तथा उन सिद्धान्तों को जनता के सामने प्रस्तुत किया।

(2) **बीसवीं शताब्दी से द्वितीय विश्वयुद्ध तक की अवधि** (Period of 20th Century upto Second World War)—इस अवधि में राजनीतिशास्त्रियों ने अनेक प्रकार के प्रयोग किये। उन्होंने व्यवहारवाद तथा यथार्थवाद की ओर विशिष्ट ध्यान दिया जिसके फलस्वरूप एशिया, अफ्रीका तथा लैटिन अमरीका में अनेक नवीन राज्यों के उत्थान तथा उनकी राजनीतिक संस्थाओं एवं प्रक्रियाओं के अध्ययन की आवश्यकताओं ने राजनीतिशास्त्र में नवीन आयाम खोले। अंततः उन्होंने राजनीतिक घटनाओं के साथ तथ्यपूर्ण व्याख्या का भी उल्लेख किया है।

(3) **द्वितीय महायुद्धोत्तर काल** (Period of after Second World War)—यह काल द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् प्रारम्भ हुआ। इसमें राजनीतिक सिद्धान्त का निर्माण कार्य नये रूप में प्रारम्भ हुआ। यह भी विचार किया जाता है कि आगामी कुछ शताब्दियों में सिद्धान्त-निर्माण का कार्य राजनीतिक विज्ञान के साथ रहेगा।

आधुनिक राजनीतिक सिद्धान्त के बनाने तथा विकास में अमरीका की दो संस्थाओं ने अधिक कार्य किया है। इनमें से एक है, 'अमरीकन पॉलिटिकल साइन्स एसोसिएशन' तथा दूसरी है, 'सोशल साइन्स रिसर्च एसोसिएशन'। दोनों के प्रयास से राजनीति विज्ञान के क्षेत्र में एक नवीन दिशा को स्थान प्राप्त हुआ है।

मेरियम (Meriam) के अनुसार, आधुनिक राजनीतिक सिद्धान्त का विकास काल निम्नवत् है—

(1) **आधुनिक युग के प्रारम्भ से 1850 ई. तक का काल**—इसमें मुख्य रूप से दार्शनिक तथा निगमनात्मक प्रणालियों को स्थान दिया गया।

(2) सन् 1850 से 1900 तक का युग—इस अवधि में ऐतिहासिक तथा तुलनात्मक पद्धतियों को अपनाया गया।

(3) सन् 1900 से 1923 तक का युग—इस युग में पर्यवेक्षण, सर्वेक्षण तथा मापन का कार्य हुआ।

(4) सन् 1923 से द्वितीय विश्वयुद्ध तक का युग—इस युग में राजनीतिक विज्ञान में मनोवैज्ञानिक तथ्यों को रखा गया।

(5) द्वितीय विश्वयुद्ध से 1949 ई. तक का युग।

(6) सन् 1950 से 1965 ई. तक का युग।

(7) सन् 1965 ई. से आज तक का समय।

विकास के काल का अध्ययन करने से विदित होता है कि आधुनिक राजनीतिक सिद्धान्त को परम्परागत राजनीतिक सिद्धान्त से पृथक् करने के कार्य को ही इस काल में प्रमुखता प्रदान की गयी।

मेरियम की आकांक्षा थी कि राजनीतिक विज्ञान का मूलाधार मनोवैज्ञानिक हो। अतः विद्वानों ने उसके विचारों का अध्ययन करके राजनीति विज्ञान में अनुशासन की पद्धतियों को भी अपनाये जाने पर बल दिया। उसके अनुसार, राजनीति विज्ञान में अन्तःअनुशासन (inter-diciplinary) के विज्ञान को अपनाना आवश्यक है। उसने अपने ग्रन्थ 'न्यू आस्पैक्ट्स ऑफ पॉलिटिक्स' (*New Aspects of Politics*) में लिखा है कि राजनीति विज्ञान के अध्ययन के लिए नवीन पद्धतियों को खोजना आवश्यक है।

अमरीका के अतिरिक्त विश्व के कुछ अन्य देशों ने भी राजनीतिक सिद्धान्त के विकास में योगदान किया है। जिन विद्वानों ने इस ओर विशेष रूप से ध्यान दिया है उनमें ग्राहम वालास, कार्ल मार्क्स, वेबर, दुर्खीम, फ्रॉयड, पैरेटो आदि के नाम प्रमुख हैं।

आधुनिक राजनीतिक सिद्धान्त की प्रकृति तथा प्रवृत्तियाँ

[MAIN TRENDS AND NATURE OF MODERN POLITICAL THEORY]

आधुनिक राजनीतिक सिद्धान्त के विकास के आधार पर उसकी प्रकृति तथा प्रवृत्तियों का अध्ययन निम्नलिखित रूप में किया जा सकता है—

(1) **शक्ति का अध्ययन** (Study of Power)—राजनीति विज्ञान के अध्ययन में शक्ति के अध्ययन को प्रमुखता दी जाती है। **लासवेल** (Laswell) ने लिखा है, "एक अनुभववादी व्यवस्था के रूप में राजनीतिशास्त्र शक्ति एवं उपभोग का अध्ययन करता है।" वेबर ने लिखा है कि बिना शक्ति के राजनीति व्यर्थ है। कैटलिन ने राजनीति को शक्ति का विज्ञान कहा है।

शक्ति समाज का आधार है। **बीयरस्टेड** (Bierstedt) ने इस सम्बन्ध में लिखा है, "शक्ति समाज की आधारभूत सुव्यवस्था का सहारा है। जहाँ की भी सुव्यवस्था देखी जाती है, वहाँ शक्ति का अस्तित्व अवश्य पाया जाता है, शक्ति प्रत्येक संगठन के पीछे है और प्रत्येक संरचना को बनाये रखती है। बिना शक्ति के कोई संगठन नहीं हो सकता तथा बिना शक्ति कोई सुव्यवस्था नहीं हो सकती।"

Scanned with CamScanner

(2) **अनुभवों पर आधारित** (Based on Experiences)—आधुनिक राजनीतिक सिद्धान्त यथार्थवादी है और व्यवहारवादी दृष्टिकोण अपनाने पर बल देता है। अधिकांश अध्ययन प्रायः वर्णनात्मक एवं अनुभवात्मक हैं जो कि पर्यवेक्षण, माप, तार्किकता आदि तकनीकों पर आधारित हैं। वस्तुपरकता (Objectivity) ने आत्मपरकता (Subjectivity) का स्थान ले लिया है।

(3) **राजनीतिक दृष्टिकोण को अपनाना** (To adopt Political Approach)—आधुनिक युग में राजनीति विज्ञान के अध्ययन के लिए राजनीतिक दृष्टिकोण को अपनाया जाता है। इसके अन्तर्गत समस्त सामाजिक संस्थाओं, शक्तियों तथा परम्परागत बन्धनों का अध्ययन किया जाता है। इस सम्बन्ध में विद्वानों का कहना है कि सभी प्रकार की राजनीतिक सुविधाओं का सामाजिक शक्तियों की आन्तरिक क्रियाओं से घनिष्ठ सम्बन्ध है, इसीलिए राजनीतिक दृष्टिकोण को अपनाया जाता है।

(4) **यथार्थवादी विज्ञान** (Realistic Science)—आधुनिक राजनीतिक सिद्धान्त का विज्ञान यथार्थवादी है। राजनीतिशास्त्र के अध्ययनकर्ता अब परम्परागत सीमाएँ त्यागकर अध्ययन करते हैं। इसके लिए वे राजनीतिक तथ्य और घटनाएँ जहाँ उपलब्ध हों, चाहे वे समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र, धर्मशास्त्र के विषय में हों अथवा व्यक्ति, परिवार, राष्ट्र और विश्व से सम्बन्धित हों, उनका अध्ययन करते हैं। यहाँ तक कि वैयक्तिक और सामूहिक स्तर पर बचपन, वृद्धावस्था आदि में विकसित राजनीतिक प्रवृत्तियों को भी सर्वेक्षण और शोध का विषय बना लिया गया है। राजनीतिशास्त्र के अध्ययनकर्ता की यह भावना रहती है कि वास्तविक परिस्थितियों का अध्ययन किया जाये और उन्हीं को वास्तविकता प्रकट करने वाली अवधारणाओं का आधार बनाया जाये।

(5) **सम्पूर्ण ज्ञान का भण्डार** (Store of Complete Knowledge)—आधुनिक राजनीतिक सिद्धान्त राजनीतिक घटनाओं तथा संस्थाओं का सम्पूर्ण ज्ञान देता है। इसमें सभी प्रकार की राजनीतिक घटनाओं का सांगोपांग अध्ययन किया जाता है। आजकल मनुष्य के सामने नित नवीन परिस्थितियाँ मुँह बाये खड़ी रहती हैं। आधुनिक राजनीतिक विज्ञान उन परिस्थितियों का क्रमशः अध्ययन प्रस्तुत करता है।

(6) **विश्वसनीय सामग्री के आधार** (Basis of Reliable Sources)—आधुनिक राजनीतिक सिद्धान्त के लिए जितने तथ्य इकट्ठे किये जाते हैं, उनके लिए विश्वसनीय सामग्री को आधार बनाकर कार्य सम्पन्न किया जाता है। इसके लिए छोटी-छोटी इकाइयों का निर्माण तथा शोधन भी लाभकारी होता है।

(7) **मानवीय व्यवहार का अध्ययन** (Study of Human Behaviour)—आधुनिक युग में राजनीति विज्ञान का क्षेत्र अत्यधिक विस्तृत हो गया है, जिसके कारण उसमें औपचारिक संगठनों के साथ-साथ मानव के स्वभाव तथा व्यवहार का भी अध्ययन किया जाता है। मानव का व्यवहार राजनीतिक सिद्धान्त में शक्ति का चालक माना जाता है। राजनीति के वास्तविक स्वरूप को समझने के लिए भी राज्य से परे मानव-व्यवहार के अध्ययन की आवश्यकता पड़ती है। संक्षेप में आधुनिक युग में मानव का राजनीतिक व्यवहार राजनीति विज्ञान का आवश्यक विषय माना जाता है।

(8) **वैज्ञानिक शब्दावली के आधार** (Basis of Scientific Vocabulary)—राजनीतिक विज्ञान का ज्ञान वैज्ञानिक पद्धति पर आधारित होने के कारण अब इस सिद्धान्त में

वैज्ञानिक शब्द, प्रक्रियाएँ, परिणाम निश्चित रहने लगे हैं। अध्ययन करते समय पाठक को लगता है कि वह विशुद्ध विज्ञान का कोई शोध कार्य कर रहा है।

(9) **विकासशील व्यवस्था** (Developing Stage)—राजनीति विज्ञान के अन्तर्गत आधुनिक सिद्धान्त अभी विकासशील अवस्था में है। उसमें धीरे-धीरे सत्यांश को स्थान दिया जा रहा है। इससे राजनीतिक सिद्धान्त में परिपक्वता आयेगी।

(10) **शोधकर्ता का दृष्टिकोण** (Researcher's Attitude)—आधुनिक राजनीतिक सिद्धान्त के अध्ययन में शोधकर्ता बिना किसी पूर्वाग्रह तथा पक्षपात के अपना दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है। वह पक्षपातरहित व्यवहार तथा आचरण करता है। वह धारणाओं तथा मूल्यों की ओर ध्यान नहीं देता है।

(11) **निरन्तर परीक्षण** (Continued Experiments)—आधुनिक राजनीति विज्ञान के सिद्धान्त में परीक्षण का कार्य बार-बार किया जाता है। इस दृष्टि से परीक्षा की प्रक्रिया निरन्तर बनी रहती है जिसके कारण आधुनिक राजनीतिक सिद्धान्तों में विश्वसनीयता बनी रहती है। उनकी उपयोगिता भी कम नहीं होने पाती। इस प्रकार, नवीन खोजों के लिए परीक्षण का कार्य निरन्तर चलता रहता है।

(12) **स्वायत्ततापूर्ण अनुशासन** (Autonomous Discipline)—आजकल राजनीतिज्ञ राजनीति विज्ञान के सिद्धान्तों का अध्ययन करते समय तथ्यों, निष्कर्षों तथा अनुशासन का पूर्ण ध्यान रखते हैं ताकि स्वायत्ततापूर्ण अनुशासन का अर्जन किया जा सके।

(13) **रचनात्मक कल्पना का प्रयोग** (Use of Creative Idea)—आधुनिक राजनीति के वैज्ञानिक अध्ययन में रचनात्मक कल्पना से काम लिया जाता है ताकि अध्ययन को विशुद्ध बनाया जा सके।

(14) **पूर्वकल्पना की रचना** (Formation of Hypothesis)—आजकल राजनीति विज्ञान का अध्ययन जब वैज्ञानिक तथा सैद्धान्तिक दृष्टि से होता है, तो शोधकर्ता पूर्व से ही वैचारिक कल्पना का निर्माण कर लेता है ताकि धारणा गलत न निकले।

(15) **सिद्धान्त का निर्माण** (Formation of Theory)—राजनीति विज्ञान के वैज्ञानिक अध्ययन के लिए प्रयोग, शोध, विश्लेषण, परिणाम, निष्कर्ष आदि के मध्य पारस्परिक सम्बन्ध स्थापित कर लिया जाता है ताकि व्याख्या करते समय किसी प्रकार की कठिनाई का सामना न करना पड़े।

आधुनिक राजनीतिक सिद्धान्त के उद्देश्य

[AIMS OF MODERN POLITICAL THEORY]

राजनीतिज्ञों के अनुसार, राजनीतिक सिद्धान्त के उद्देश्यों को निम्नलिखित रूप में दर्शाया जा सकता है—

(1) **समाज के आत्मानुशासन को प्रेरणा देना** (To Instigate the Society for Self-discipline)—आधुनिक राजनीतिक सिद्धान्त का यह महत्वपूर्ण लक्ष्य है कि स्वयं बदलते समाज को इस ढंग से रूपान्तरित होने का मार्ग दिखाया जाये ताकि वह समाज छोटे-बड़े सभी को अधिकाधिक स्वतन्त्रता प्रकट करने तथा आत्मानुशासन के लिए प्रेरित करे।

Scanned with CamScanner

(2) विकासशील देशों का विकास मार्ग प्रशस्त करना (To Strengthen the Developing Route of Developing Countries)—आधुनिक राजनीति विज्ञान के अध्ययन का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य इस प्रकार के सिद्धान्तों का निर्माण करना है जिससे संसार के विकासशील देशों का मार्ग प्रशस्त हो सके। इन विकासशील देशों में अनेक समस्याएं होती हैं; जैसे—भ्रष्टाचार, अत्याचार, अराजकता तथा गतिरोध। इन समस्याओं से इनको आये दिन संघर्ष करना पड़ता है। इन देशों में निर्धनता तथा भ्रष्टाचार का भी नंगा नाच होता रहता है। अतः इन देशों के लिए एक ऐसे पूर्ण सिद्धान्त की आवश्यकता है जिसके अनुसार ये देश अपनी समस्याओं को दूर करने में सफल हो सकें।

(3) शान्ति की स्थापना (To establish Peace)—आधुनिक राजनीतिक सिद्धान्त का एक उद्देश्य यह भी है कि विश्व में शान्ति की स्थापना हो। इसके द्वारा राजनीति विज्ञान को इस योग्य बनाया जा सकता है जिससे वह उत्तम मार्गों का निर्देशन करे। इन निर्देशनों से समाज के विभिन्न वर्ग, समूह, प्रजातियाँ आदि को अपनी मौलिक आवश्यकताओं की पूर्ति करते हुए जीवित रहने के अवसर प्राप्त होते हैं।

(4) अन्य उद्देश्य (Other Aims)—आधुनिक राजनीतिक सिद्धान्त के कुछ अन्य उद्देश्य भी हैं; जैसे—समाज का हित साधना, मानव हित की ओर ध्यान देना, निर्धनता, विकलांगता आदि दूर करने के प्रयास करना आदि। इन उद्देश्यों के लिए राजनीति विज्ञान द्वारा राजनीतिक व्यवस्था का सम्पूर्ण चित्र प्रस्तुत किया जाता है।

उपर्युक्त विवेचन से यह तथ्य स्पष्ट होता है कि आधुनिक राजनीतिक सिद्धान्त में विषय विशिष्टता का अभाव है। इस सिद्धान्त के प्रायः सभी विचारकों ने अपने अध्ययन का क्षेत्र राज्य सरकार, राजनीतिक संस्थाएँ, राज्य के लक्ष्य, न्यायप्रियता, लोक-कल्याण आदि को माना है। परन्तु आजकल राजनीतिक विज्ञान के सिद्धान्त के अध्ययन के लिए राजनीतिक दृष्टिकोण भी आवश्यक है ताकि सामाजिक संस्थाओं तथा सामाजिक उद्देश्यों के विषय में भी ज्ञान प्राप्त किया जा सके।

आधुनिक राजनीतिक सिद्धान्त निर्माण के सम्बन्ध में डेविड ईस्टन के विचार (Ideas of David Easton on Modern Political Theory Building)

आधुनिक राजनीतिक सिद्धान्त के निर्माण, प्रसार एवं आवश्यकता का प्रबल समर्थक डेविड ईस्टन है। उसने अपनी पुस्तकों—The Political System – 1953; A Framework of Political Analysis – 1965; Varieties of Political Theory – 1965 (ed.); A Systems Analysis of Political Life – 1965 में राजनीतिक सिद्धान्त निर्माण के महत्व को बताया। ईस्टन के अनुसार, सिद्धान्त के अभाव में स्वयं 'अमरीकी राजवैज्ञानिक स्वतन्त्र पैदा होता है किन्तु अति-यथातथ्यवादी अतीत से बँधा होने के कारण, वह सर्वत्र बन्दी है।'

राजनीतिक सिद्धान्त की आवश्यकता के सम्बन्ध में डेविड ईस्टन का कहना है, 'राजनीति विज्ञान का भविष्य, उसके भविष्य निर्देशन व सामंजस्य की समस्या का समाधान राजनीतिक सिद्धान्त द्वारा ही सम्भव है। एक ऐसा सामान्य सिद्धान्त निर्मित किया जाये जो अनुशासन के रूप में राजनीति विज्ञान के सम्पूर्ण विषय-क्षेत्र को दिशा-निर्देश, सामंजस्य तथा व्यवस्था प्रदान कर सके।"

डेविड ईस्टन ने राजनीतिक सिद्धान्त की अवधारणा का वर्णन करते हुए निम्न विचार व्यक्त किये हैं, "सिद्धान्त सम्बन्धों का प्रकार, आनुभविक, संगतिपूर्ण तथा तर्कपूर्ण एकीकृत समुच्चय है। यह राजनीतिक जीवन का विश्लेषण एक राजनीतिक व्यवहार की व्यवस्था के रूप में करना सम्भव बनाता है।" इस प्रकार डेविड ईस्टन की इस अवधारणा से पता चलता है कि सिद्धान्त में व्याख्या तथा राजनीतिक तथ्यों का विश्लेषण, दोनों बातें हैं।

अवधारणात्मक विचारबन्ध (Conceptual Framework)—डेविड ईस्टन ने अपने सिद्धान्त को 'अवधारणात्मक विचारबन्ध' अथवा वैचारिक रूपरेखा के रूप में रखा है। डेविड ईस्टन समाज के लिए मूल्यों के प्रावधान से सम्बन्धित गतिविधियों को 'राजनीति' कहता है। इन मूल्यों के विनियोजन से सम्बन्धित गतिविधियों का विश्लेषण व्यवहारवादी एवं वैज्ञानिक पद्धति के द्वारा किया जाना चाहिए। इस प्रक्रिया में पहले परिकल्पनाएँ (hypothesis) आयेंगी। उनका आनुभविक अवलोकन एवं विश्लेषण करने के पश्चात् सिद्धान्त अथवा सामान्यीकरण प्राप्त होंगे।

अवधारणात्मक विचारबन्ध में अवधारणाएं एवं मॉडल मिले होते हैं तथा उनका उद्देश्य सिद्धान्त का निर्माण करना होता है। अवधारणात्मक विचारबन्ध (अथवा वैचारिक रूपरेखा) शोधक (researcher) या अध्येता को अनुसन्धान की एक अमूर्त परियोजना देता हुआ मार्गदर्शन करता है। इसके माध्यम से वह अपनी विषय-सामग्री का अन्वेषण, निर्धारण, अवलोकन, वर्गीकरण और एकीकरण करता है। विचारबन्ध के दो प्रकार हो सकते हैं—(क) राजनीतिक इकाइयों सम्बन्धी, (ख) राजनीतिक प्रक्रियाओं सम्बन्धी। इकाइयों में व्यक्ति, समूह, संस्कृति, संगठन आदि आते हैं, जबकि प्रक्रियाओं में घटनाओं के लम्बे अनुक्रम का अध्ययन किया जाता है। इकाइयों में राजनीतिक घटना का; किसी निश्चित समय पर अध्ययन किया जाता है। इससे अवलोकन स्थैतिक (Static) हो जाता है। संचारण (Communication), निर्णयन (decision-making), शक्ति आदि से सम्बन्धित सिद्धान्त प्रक्रियात्मक होते हैं। ये विचारबन्ध गतिशील (dynamic) माने जाते हैं।

डेविड ईस्टन ने लिखा है कि आधुनिक राजनीतिक सिद्धान्त में विचारबन्ध भी आवश्यक है, क्योंकि बिना इसके कोई भी अनुसन्धान पूर्ण नहीं होगा। उनका कहना है कि विचारबन्ध एक प्रकार की विश्लेषण योजना के रूप में मानी जाती है। साथ ही इन विचारबन्धों के द्वारा राजनीति तथा उससे सम्बन्धित विषयों के पारस्परिक सम्बन्धों को व्यक्त करने में भी सहायता मिलती है।

डेविड ईस्टन ने अवधारणात्मक विचारबन्ध के सम्बन्ध में लिखा है कि जिन बन्धों का उद्देश्य सिद्धान्तों का समुचित रूप में निर्माण करना होता है वे संरचनात्मक होते हैं। ये सभी अपने-अपने दृष्टिकोण से विषय-सामग्री का उल्लेख करते हैं। विषय-सामग्री के चयन में सभी प्रकार की परियोजनाओं को स्थान दिया जाना चाहिए। ईस्टन ने इसी रूप में 'व्यवस्था सिद्धान्त' के अवधारणात्मक विचारबन्ध को अपनाया है। इस प्रकार ईस्टन ने सिद्धान्त को राजनीति के व्यवस्थित अध्ययन कर सकने के प्रयोगात्मक प्रयास के रूप में किया है। वह इसे एक अवधारणात्मक ढाँचा के रूप में प्रस्तावित करता है। इस प्रकार उसको सिद्धान्त

Scanned with CamScanner

सम्बन्धी विचारधारा वैज्ञानिक दृष्टिकोण से केवल मात्र एक रूपरेखा अथवा एक व्यापक विषय-परिधि (frame of reference) के समान है। इसको निम्न चित्र में दर्शाया गया है—

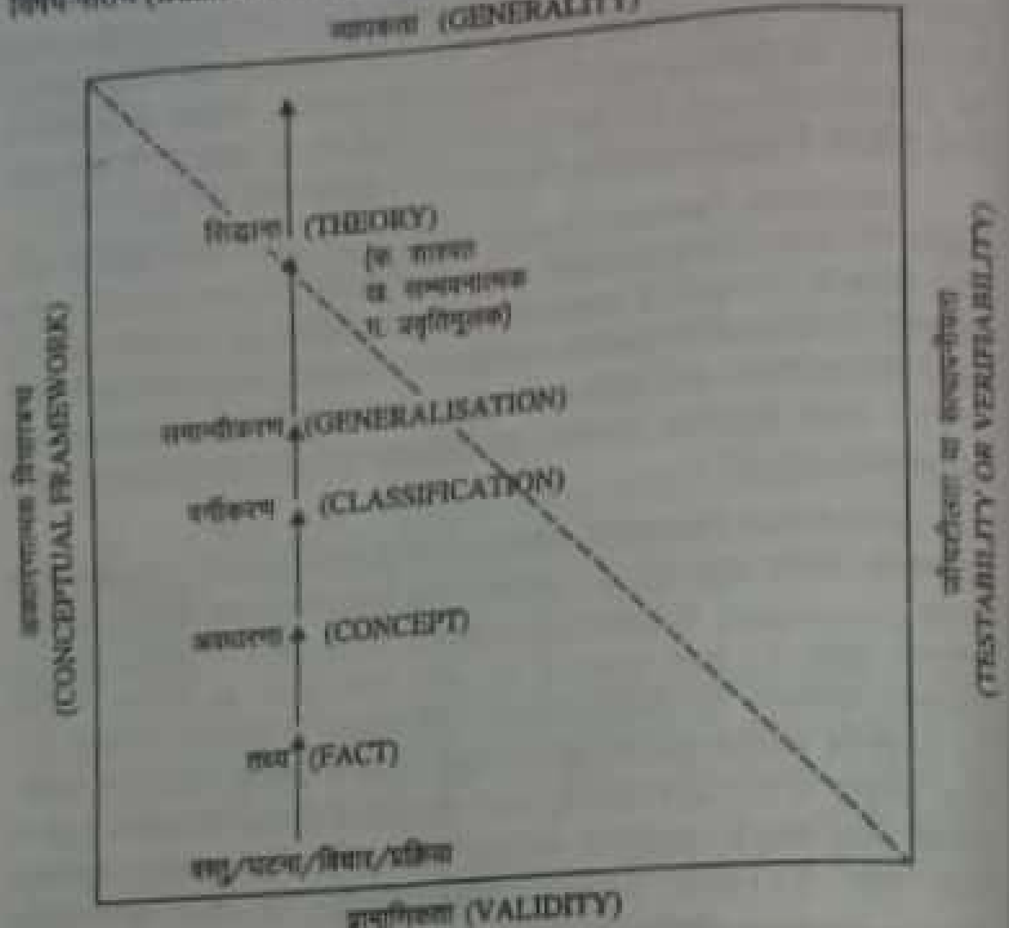

सिद्धान्त-निर्माण की प्रक्रिया के आधार (Basis of the process of theory-making)

डेविड ईस्टन अपने सिद्धान्त में नैतिक तथ्यों और मूल्यों को भी प्रधान स्थान देता है, जिससे सैद्धान्तिक वैज्ञानिकता पर प्रश्नचिह्न लग जाता है।

डेविड ईस्टन के विचारों के सम्बन्ध में मीहान (Meehan) ने लिखा है, "पारसन्स की तरह ईस्टन सिद्धान्त को व्याख्या की शब्दावली में नहीं वरन् अवधारणात्मक विचारबन्ध के अर्थों में सोचता है। इसका परिणाम एक ऐसी अमूर्त रचना है जोकि तार्किक दृष्टि से सन्देहास्पद, अवधारणात्मक आधार पर धूमिल अनुभव के बिन्दु से अनुपयोगी है।"

इस प्रकार डेविड ईस्टन के विचार आधुनिक वैज्ञानिक सिद्धान्त की धारणा के अनुसार वैज्ञानिक नहीं माने जा सकते। यद्यपि उसी ने अनुशासनात्मक स्वायत्तता, विकास और समानुरूपता की दृष्टि से सिद्धान्त के निर्माण और प्रसार पर सर्वाधिक बल दिया है।

आर्नोल्ड ब्रेश्ट के विचार (Ideas of Arnold Brecht)

आर्नोल्ड ने राजनीतिक सिद्धान्त के विचार उसके व्यापक अर्थों में प्रकट न करके केवल राजनीतिक सन्दर्भ में व्यक्त किये हैं। उसने कहा है कि राजनीतिक सिद्धान्त सार्थक है, निरर्थक

नहीं। उसने सिद्धान्त की परिभाषा इस प्रकार दी है, "यह एक प्रकार की प्रस्तावना अथवा प्रस्तावना के समूहों का भण्डार है, जो विषय-सामग्री के सन्दर्भ में प्रत्यक्षतः पर्यवेक्षित अथवा अप्रकट अन्तःसम्बन्धों या किसी विशेष की व्याख्या करता है।"

विज्ञान की परिभाषा करते हुए ब्रेश्ट ने लिखा है, "यह अन्तःस्वानुभूतिमूलक संचारणीय ज्ञान" (inter-subjectivity transmissible knowledge) है। यह विज्ञान के दो अर्थ बताता है—

(a) व्यापक अर्थ में विज्ञान में शुद्ध तर्क, अन्तर्ज्ञान (intuition), स्वयं साक्ष्य (self-evidence), धर्म प्रकाशन (religious revalation) आदि सम्मिलित किये जा सकते हैं।

(b) संकुचित अर्थ में विज्ञान केवल वैज्ञानिक पद्धति, आनुभविक पर्यवेक्षण, तर्कपूर्ण युक्तियों आदि पर आधारित हो सकता है। वह राजनीति विज्ञान को विज्ञान का स्तर प्रदान करने के लिए केवल संकुचित अर्थों को स्वीकार करता है तथा इसी आधार पर राजनीतिक सिद्धान्त के निर्माण की योजना प्रस्तुत करता है।

ब्रेश्ट के विचारों के विषय में ओरन आर. यंग (Oran R. Young) ने लिखा है, "वैज्ञानिक सिद्धान्त सामान्यतया परिवर्त्यों का विवरण, परिवर्त्यों के मध्य सम्बन्धों तथा परिवर्त्यों की अन्तःक्रियाओं के पूर्वकथित परिणामों का विचारबन्ध है।" यंग ने उसे 'परिवर्त्यों के अन्तर-सम्बन्धात्मक-विषयक सामान्यीकृत विवरण के रूप में स्वीकार किया है। 'गिडियन सोबर्ग एवं रोजर नेट (Gideon Sjoberg and Roger Nett) ने इसे तर्कसंगत अन्तर्सम्बन्धित प्रस्तावनाओं या विवरणों का सैट माना है जोकि अनुभवात्मक दृष्टि से अर्थपूर्ण हो तथा शोधकर्ता की उन मान्यताओं से मेल खाता हो जिन्हें वह अपनी पद्धति और विषय-सामग्री के सन्दर्भ में ग्रहण करता है। इस प्रकार वैज्ञानिक सिद्धान्त एक सत्यापित प्राक्कल्पना है जिसके सत्यापन का प्रमुख आधार—(1) निगमनात्मक (deductive), (2) प्रत्यक्षात्मक (positive) पद्धतियाँ हों। परन्तु वैज्ञानिक सिद्धान्त प्रत्यक्षात्मक एवं आगमनात्मक (inductive) पद्धति को प्रमुख आधार बनाता है।

ब्रेश्ट ने वैज्ञानिक राजनीतिक सिद्धान्त की विशेषताओं को निम्नलिखित रूप में व्यक्त किया है—

(1) राजनीतिक सिद्धान्त में केवल उन तथ्यों का अध्ययन किया जाता है, जो मनुष्य को अपनी इन्द्रियों द्वारा अप्रत्यक्ष रूप से अनुभव किये जा सकें।

(2) वैज्ञानिक सिद्धान्त में अध्ययन से पूर्व एक संकल्पनात्मक रूपरेखा भी बना ली जाती है।

(3) सिद्धान्त को व्याख्यात्मक स्वरूप प्रदान करने के लिए शोध तथा विश्लेषणों के परिणामों को भी समझना आवश्यक है।

(4) आधुनिक युग में इस प्रकार के वैज्ञानिक सिद्धान्तों की बहुत आवश्यकता है।

(5) वैज्ञानिक राजनीतिक सिद्धान्त के विषय में जितना भी ज्ञान होता है वह विश्वसनीय तथा उपयोगी होता है। इसका कारण यह है कि उसे वैज्ञानिक विधियों द्वारा भली-भाँति परख लिया जाता है।

Scanned with CamScanner

(6) शोधकर्ता तथा अध्ययनकर्ता अपने को तथा अपने अध्ययन को मूल्यों के प्रभाव से अलग करता है।

(7) इस सिद्धान्त में शब्द, प्रक्रियाओं तथा परिणामों को निश्चित तकनीकी रूप दिया जाता है।

(8) अध्ययन के लिए सर्वसम्मत वैज्ञानिक प्रणालियों का प्रयोग किया जाता है।

कार्ल ड्यूश के विचार (Karl Deutsch's Views)

आधुनिक वैज्ञानिक राजनीतिक सिद्धान्त के बारे में कार्ल ड्यूश के विचार भी उपयोगी हैं। इन विचारों को उसने अपने निबन्ध "सिद्धान्त तथा राजनीतिक मर्म मीमांसा" में व्यक्त किया है। उसने ज्ञान तथा सिद्धान्त पर अधिक विचार किया है। उसके विचारों का अध्ययन निम्नलिखित रूप में किया जा सकता है—

(1) **ज्ञान का गठित सरलीकरण** (Organised Simplicity of Knowledge)—कार्ल ड्यूश का कहना है कि राजनीतिक सिद्धान्त के द्वारा ज्ञान का गठित सरलीकरण होता है। सरलीकरण की क्रिया राजनीति से सम्बन्धित धारणाओं पर आधारित होती है। इसके अन्तर्गत शक्ति, औचित्य, प्राकृतिक अधिकार आदि को संगठित किया जाता है। चूँकि ज्ञान व्यवहारवादी आधार पर आगामी होता है अतः सरलीकरण की क्रिया स्वतः स्फूर्ति से चलती है। इससे राजनीति सम्बन्धी सूचनाओं को योजनाबद्ध करने में सहायता मिलती है।

(2) **ह्यूरिस्टिक प्रभावशीलता** (Heuristic Influence)—ह्यूरिस्टिक प्रभाव से राजनीतिक सिद्धान्त अत्यधिक प्रभावशाली बन जाते हैं, क्योंकि इसके द्वारा नवीन ज्ञान, नवीन आविष्कार तथा नवीन सिद्धान्तों का निर्माण करने में अधिक समय मिल जाता है। इसका प्रमुख कारण यह है कि सिद्धान्त के ह्यूरिस्टिक प्रभाव के कारण निरीक्षण, परीक्षण, प्रयोग तथा आविष्कार के लिए नवीन उपकरणों की रचना की जाती है।

(3) **आत्म-आलोचना का भाव** (Sense of Self-criticism)—इस विचारधारा के आधार पर कार्य के सत्यापन तथा संयोग पर बल दिया जाता है। इस सिद्धान्त में आत्म-आलोचना की बात को न केवल यथार्थता की प्रथम आदेश थ्योरी कहा जाता है वरन् यह सिद्धान्तों की सीमा को भी एक नया रूप देती है।

(4) **रुचि उत्पन्न करने में सहायक** (Helpful in Creating Interest)—सिद्धान्त की सहायता से बाह्य जगत् की वस्तुओं, घटनाओं, प्रतीकों, सम्बन्धों आदि का व्यवस्थित तथा सामान्य स्वरूप भली-भाँति समझा तथा पहचाना जा सकता है। इसके द्वारा उसके नामकरण में सहायता मिलती है।

(5) **सिद्धान्त कोडिंग स्कीम के रूप में** (Theory as a Coding Scheme)—कार्ल ड्यूश के अनुसार, सिद्धान्त स्मृतियों को संग्रह करने तथा भूलों को विस्मृतियों के गर्भ से निकालने का संगठित प्रयास करता है, जिससे वह एक कोडिंग स्कीम के अनुसार कार्य करने लगता है।

उपर्युक्त विचारों के अनुसार, यह बात स्पष्ट होती है कि राजनीतिक सिद्धान्त दो प्रकार से उपयोगी है। एक उपयोगिता यह है कि इनके द्वारा हमारी धारणाओं और शोधों की भूल पता चल जाती है। दूसरी उपयोगिता में हम ज्ञान के सत्य को सरलतापूर्वक पहचान लेते हैं। ड्यूश ने इस सम्बन्ध में लिखा है, "आत्म-आलोचना बोध हमें सामान्य तथ्यात्मक भूलों के

विरुद्ध चेतावनी ही नहीं देता वरन् यह भी बताता है कि हमारी खोज अथवा शोध में पूर्वोक्त की जटिल भूलें या प्रच्छन्न मान्यताएँ या ऐसे प्रश्न-चिह्न, जिन्हें हम जोड़ना भूल गये हैं और जो हमारी खोज से बाहर पड़ते हैं, कौन-कौन से हो सकते हैं।"

ड्यूश की उपर्युक्त विशेषताएँ सिद्धान्त के ज्ञान से सम्बन्धित हैं, जबकि निम्नलिखित विशेषताएँ क्रियात्मक पक्ष से सम्बन्धित हैं—

(1) **अनुभवपरक ज्ञान** (Empiricial Knowledge)—राजनीति का अध्ययन करने में अनुभवपरक ज्ञान का बहुत महत्व है। इससे राजनीति विज्ञान का अध्ययन सरल हो जाता है। इस दृष्टि से उसे इस प्रकार का ज्ञान कहा जा सकता है जिसे सत्यापित तथा परीक्षित किया जा सके। विभिन्न खोजकर्ताओं द्वारा इसे मिल-जुलकर बाँटा जा सकता है—चाहे उनके व्यक्तित्व का प्रभाव कुछ भी हो। व्यक्ति वास्तव में प्रकृति की रचना है, इसलिए उसके आचरण का ज्ञान प्रकृति के विभिन्न अंगों के अनुसार जाना जा सकता है। राजनीतिक आचरण सम्बन्धी यह ज्ञान इस बात को स्पष्ट करता है कि राजनीतिक उद्देश्यों की प्राप्ति किस प्रकार की जा सकती है ? किन उद्देश्यों को प्राप्त करना आवश्यक है और वे किन परिस्थितियों में लागू हो सकते हैं ? वस्तुपरक इस ज्ञान को समझने के लिए उद्देश्यों को अनुकूल बनाना आवश्यक है।

(2) **मूल्यों तथा उद्देश्यों का ज्ञान तथा अनवरत चेतना** (Knowledge of Value and Aims and Continued Sense)—यह अनवरत चेतना मनुष्य तथा समूह दोनों के लिए आवश्यक है। इसके द्वारा व्यक्तिगत इच्छाएं, प्राथमिकताएँ, उनकी उपयोगिता सूची, उनके इच्छित परिणाम या उद्देश्य वास्तविक उद्देश्यों का प्रतिनिधित्व करते हैं। वास्तव में, मूल्य चेतना में जिन वस्तुओं को स्थान दिया जाता है वे उस सम्पूर्ण विचार को लेकर अग्रगामी होते हैं, जिनमें इच्छित परिणामों के वर्ग सम्मिलित होते हैं।

ड्यूश ने लिखा है, "अन्ततः मूल्य चेतना में मूल्यों का वह संश्लिष्ट पार्श्व चित्र भी आ सकता है, जो प्रायः उपलब्ध दर्शनों, धार्मिक, राजनीतिक विचारों तथा नये उद्बोधनों द्वारा प्रस्तावित किये जाने वाले चित्र के अनुकूल होते हैं।"

(3) **बुद्धि का तत्व** (Element of Intelligence)—ड्यूश ने बुद्धि तत्व को भी महत्वपूर्ण माना है। उसके अनुसार, बुद्धि का प्रयोग विशेषतः ज्ञान को प्राप्त करने तथा मूल्यों के चयन के लिए किया जाता है। बुद्धि के द्वारा ही उद्देश्यों का चयन किया जाता है। यही बुद्धि उद्देश्य चित्रों में परिवर्तन की सूचना भी देता है। बुद्धि के माध्यम से हम अपने विषय में सोचते भी हैं। अपने अभ्यास तथा अनुभव बुद्धि के द्वारा ही सम्भव हैं। मनुष्य के विचारों, भावनाओं तथा क्रियाओं के विषय में बुद्धि सबसे आगे चलती है। यदि हम नैतिक, बौद्धिक या कलात्मक प्रश्नों के उत्तरों के सम्बन्ध में शोध करना चाहते हैं, तो भी हमें बुद्धि का सहारा लेना पड़ता है।

(4) **परिणामवादी योग्यताएँ** (Pragmatic Skills)—योग्यता या कार्य करने की पद्धति को नियन्त्रण में लाना भी आवश्यक है। इसके द्वारा व्यावहारिक राजनीति का ज्ञान होता है। तकनीक को प्राप्त करना, सीखना तथा दूसरों तक पहुँचाना परिणामवादी योग्यताओं के अंग हैं। ड्यूश ने इस सम्बन्ध में लिखा है, "इन योग्यताओं को वर्णन की अपेक्षा अनुभव, प्रशिक्षण तथा आदर्शों के माध्यम से सिखाया जा सकता है। इनकी कार्य सम्पादन सफलता

Scanned with CamScanner

क्रमबद्ध तर्क की समानता पर बल और दृष्टिकोण की असमानताओं पर अधिक निर्भर करती है।"

सिद्धान्त निर्माण के विभिन्न आयाम

[VARIOUS DIMENSIONS OF THEORY MAKING]

सिद्धान्त निर्माण की प्रक्रिया की विशेषता से इस प्रक्रिया के निम्नलिखित आयामों का वर्णन किया जा सकता है—

(1) **प्रामाणिकता** (Validity)—इसका तात्पर्य है कि प्रत्येक संकल्पना का अनुभवजन्य रूपों में गुणों का होना आवश्यक है।

(2) **व्यापकता** (Generality)—सिद्धान्त की व्यापकता का अर्थ है कि सिद्धान्त से अधिक वस्तुओं, घटनाओं की विशेषताओं, साधारण पारस्परिक सम्बन्धों आदि में स्पष्ट करने की विशेषता आवश्यक है। ज्यों-ज्यों तथ्य से आगे बढ़ने का कार्य प्रारम्भ होता है, सिद्धान्तों की व्याख्या भी बढ़ती रहती है। इस तरह ज्यों-ज्यों प्रक्रिया पूर्णता की ओर बढ़ती है, सिद्धान्त से व्याख्या करने का गुण अधिक पाया जाने लगता है।

(3) **परीक्षणशीलता** (Testability)—सिद्धान्त निर्माण की प्रक्रिया में परीक्षणशीलता का अर्थ है कि यह वस्तु, घटना या प्रक्रिया इस प्रकार की होनी चाहिए कि उसे प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से ज्ञात किया जा सके। साथ ही उसके गुणों की विशेषताओं का भी पता लगाया जा सके। इस प्रकार परीक्षणशीलता का गुण इस आयाम में बहुत महत्वपूर्ण है।

(4) **अवधारणात्मक रूपरेखा** (Conception Framework)—सिद्धान्त की प्रक्रिया से अवधारणापूर्ण रूपरेखा का प्रयोग सिद्धान्त-निर्माण के लिए परमावश्यक है। इससे घटनाएँ, गतिविधियाँ, वस्तुओं आदि का चुनाव करने में सरलता हो जाती है। इसके आधार पर किया गया चुनाव बहुत महत्वपूर्ण होता है। इस प्रकार, सिद्धान्त निर्माण की प्रक्रिया विभिन्न आयामों से सम्पन्न होकर आगे बढ़ती है।

मूल्य-तथ्य अलगाव (Value-fact Dichotomy)

राजनीति विज्ञान के महत्वपूर्ण तत्वों में मूल्य तथा तथ्य भी आते हैं। राजनीति विज्ञान को 'विज्ञान' इसलिए कहा जाता है कि यह विशुद्ध तथ्यों के आधार पर अध्ययन करने में समर्थ है, परन्तु इसे एक मानवीय तथा सामाजिक विज्ञान भी माना जाता है। यही कारण है कि मूल्यों, आदर्शों तथा प्रयोजनों से भी राजनीति विज्ञान सम्बन्धित है। परन्तु राजनीति विज्ञान में राजनीति के तथ्यों को उचित रूप में देखा जा सकता है या नहीं, इसके लिए राजनीति विज्ञान के मूल्यों का अध्ययन करना आवश्यक है। इस दृष्टि से इसे सामान्य विज्ञान माना जा सकता है, परन्तु विपरीत दशा में इसे प्राकृतिक विज्ञान माना जा सकता है।

विभिन्न दृष्टिकोण (Various Approaches)

विभिन्न प्रकार के दृष्टिकोणों की गणना भी राजनीति सिद्धान्त के अन्तर्गत की गयी है। ये दार्शनिक दृष्टिकोण, परम्परावादी दृष्टिकोण तथा ऐतिहासिक दृष्टिकोण के नाम से जाने जाते हैं। परम्परावादी दृष्टिकोण में मूल्यों को प्रधानता दी गयी है। इस दृष्टिकोण के विचारकों द्वारा धर्म, स्मृति, दर्शन, चिन्तन, इतिहास, विश्वास तथा श्रद्धा, संविधान तथा उसके पश्चात् आस्था और विश्वास की बातें बतायी गयी हैं। ये मूल्य विश्वास, श्रद्धा, आस्था एवं आन्तरिक प्रेरणा

पर आधारित होते हैं। परन्तु अनुभववादी दृष्टिकोण में व्यवहारवादी दृष्टिकोण तथा राजनीति के अध्ययन पर विशेष बल दिया गया है। इस प्रकार के दृष्टिकोण राजनीतिक प्रक्रिया की मूल्य व्यवस्था को परिलक्षित करते हैं। राजनीतिक अध्ययन में किस प्रकार के मूल्यों को स्थान दिया जाये या बिल्कुल न दिया जाये, यह प्रश्न विचारकों के समक्ष आदर्शवादी तथा उत्तर-व्यवहारवादी विद्वानों ने भी प्रस्तुत किया था।

मूल्य के दृष्टिकोण से राजनीतिक वैज्ञानिकों को तीन वर्गों में रखा जा सकता है—

(1) मूल्य निरपेक्षता से सम्बन्ध रखने वाले विचारक, (2) मूल्यों के अभाव में अनुपयोगी, अवास्तविक तथा असम्भव राजनीति का स्वरूप प्रदर्शित करने वाले विचारक, (3) मूल्यों का अध्ययन सम्भव तथा महत्वपूर्ण बताने वाले विचारक।

मूल्यों का महत्व

[IMPORTANCE OF VALUES]

राजनीति विज्ञान में मूल्यों तथा तथ्यों का महत्वपूर्ण स्थान है। हम यह जानते हैं कि राजनीति विज्ञान का अध्ययन तथ्यों पर आधारित है, यही कारण है कि राजनीति विज्ञान को विज्ञान की संज्ञा से विभूषित किया गया है। परन्तु इसे प्राकृतिक विज्ञान की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता, क्योंकि इसमें सामाजिकता तथा मानवीयता का भाव है। प्राकृतिक विज्ञान के समान राजनीति विज्ञान में राजनीति के तथ्यों को मूल्य निरपेक्ष होकर देखा जा सकता है। इस सम्बन्ध में विचारक एकमत नहीं हैं। ये विचारक दो भागों में विभक्त हो गये हैं—

(1) **अनुभवातीतवादी** (Trans-Empiricists)—इस विभाग में विचारक मनुष्य के चुनाव तथा उसकी व्यक्तिगत आवश्यकताओं के बारे में बताते हैं।

(2) **अनुभववादी** (Empiricists)—इस विभाग में राजनीतिक विचारक महत्वपूर्ण तथा सारगर्भित बातों का अध्ययन करते हैं। इस प्रकार मूल्य को निम्नांकित तथ्य प्रभावित करते हैं—

1. स्थानापन्नों का ज्ञान होना आवश्यक है।
2. किसी विशिष्ट समय में विभिन्न स्थानापन्नों की अवस्था में ही निर्णय होता है।
3. किसी व्यक्ति का निर्णय यह भी हो सकता है कि वह सम्भवित सभी स्थानापन्न परिणाम का क्या मूल्य निश्चित करता है।
4. दशाओं के अनिश्चित होने पर निर्णय अनिश्चितताओं तथा जोखिम पर भी निर्भर है।

इस प्रकार, विभिन्न स्थानापन्नों के बीच जब तुलना की जाती है, तो व्यक्ति निर्णय करने के योग्य हो जाता है।

राजनीति विज्ञान में मूल्यों का आधार

[FOUNDATIONS OF VALUE IN POLITICAL SCIENCE]

राजनीति विज्ञान के मूल्यों के आधार के सम्बन्ध में विद्वानों के विभिन्न मत हैं। ब्रेख्ट (Brecht) ने मूल्यों के तीन प्रतिस्थापनाओं के बारे में लिखा है—

1. महणीय मूल्य निर्णयों का वास्तविक ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है।

Scanned with CamScanner

2. मूल्यों तथा तथ्यों को पृथक् नहीं किया जा सकता। उसे अलग-अलग बिन्दुओं से प्रकट किया जा सकता है।

3. प्रत्येक मूल के परिणामों को ज्ञात करके एक मूल्य-मापदण्ड की रचना की जा सकती है।

आधुनिक राजनीतिक विश्लेषणों में मूल्यों के आधार सम्बन्धी मत निम्नलिखित हैं—

1. मूल्य को ईश्वर की इच्छा पर आधारित होना चाहिए।

2. ईश्वर की इच्छा को प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से जाना जा सकता है।

कान्ट तथा लियो स्ट्रास के मतानुसार—मूल्यों को प्राकृतिक नियमों पर आधारित होना चाहिए। वैसे तो ये प्राकृतिक नियम ईश्वर प्रदत्त हैं, परन्तु तर्क द्वारा इनके विषय में ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है।

जॉन डीवी का मत है—

1. राजनीतिक मूल्यों को अन्य मूल्यों के समान ज्ञात किया जा सकता है।

2. राजनीतिक मूल्यों का आधार प्राथमिकताएँ होती हैं।

3. प्राथमिकताएँ विश्वव्यापी हो सकती हैं।

राजनीतिक सिद्धान्त के ह्रास के कारण

[CAUSES OF DECLINE OF POLITICAL THEORY]

राजनीतिक सिद्धान्तों के राजनीति विज्ञान के अध्ययन में इसके महत्त्व की ओर दृष्टिपात करते हुए सिद्धान्त-निर्माण के विषय में विचार किया गया। परन्तु विगत कुछ वर्षों से निरन्तर प्रयास करने के पश्चात् भी अभी तक राजनीतिक सिद्धान्तों का निर्माण सही रूप में नहीं हो सका है और न ही सिद्धान्त-निर्माण की प्रक्रिया को कोई नवीन दिशा ही मोड़ी जा सकी है। राजनीतिक सिद्धान्त के क्षेत्र में इस धीमी गति के कुछ तर्क निम्नलिखित हैं—

(i) **चौराहे पर**—प्रायः सभी देशों में राजनीति विज्ञान एक चौराहे पर ही खड़ा है। इसके विकास की गति मन्द और अवरुद्ध है।

(ii) **सर्वमान्य सिद्धान्त का अभाव**—राजनीति विज्ञान के पास सर्वमान्य आधुनिक सिद्धान्त, अपने वैज्ञानिक उपकरणों और विकसित पद्धतियों तथा प्रविधियों का पूर्णतया अभाव है।

(iii) **दिशा भ्रान्ति**—राजनीति वैज्ञानिक अपने अग्रसर होने की दिशा को भूल चुके हैं।

(iv) **अवहेलना**—अनेक देशों में राजनीति की अवहेलना अभी भी की जा रही है। यद्यपि वे उसके बुरे परिणाम भोग चुके हैं तथा अभी भी भोग रहे हैं। पराधीनता का वास्तविक कारण यही था।

(v) **अधीनता**—परम्परागत राजनीतिक सिद्धान्त में कभी तो राजनीति को धर्म और चर्च के अधीन कर दिया गया और कभी उसे राजतन्त्र के अधीन कर दिया गया।

(vi) **अल्पतन्त्र की अधीनता**—राजनीति किसी न किसी रूप में अल्पतन्त्र के अधीन ही रही है। राजनीति के यथार्थ रूप से अनभिज्ञ समाज को दासवत् अथवा पशुवत् जीवन व्यतीत करना पड़ा है।

(vii) **नवोदित राष्ट्रों में पश्चात्**—महायुद्ध के पश्चात् उदय हुए राष्ट्रों में राजनीति की अवस्था आज भी वही है जो उनके उदय होने के समय में थी। उनमें राजविज्ञान कहने योग्य कुछ भी नहीं है।

ऐसा प्रतीत होता है कि उसे केवल सामयिक शिष्टाचार वश ही 'राजविज्ञान' अथवा 'राजनीतिक विज्ञान' के नाम से पुकारा जाता है। यह दुर्दशा केवल विकासशील देशों में ही नहीं है, वरन् अमरीका जैसे विकसित देशों में भी है। **डेविड ईस्टन** (David Easton) ने अमरीका में राजनीतिक सिद्धान्त के स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए कहा है कि, "मध्य बीसवीं शताब्दी में राजनीति विज्ञान एक ऐसा अनुशासन है जो कि अपने स्वरूप की खोज में व्यस्त है।"

राजनीतिक सिद्धान्त के ह्रास या पतन से सम्बन्धित प्रमुख मत

[MAIN VIEWS ABOUT THE DECLINE OF POLITICAL THEORY]

राजनीतिक सिद्धान्त के ह्रास या पतन के उत्तरदायित्व के सम्बन्ध में प्रमुख मत निम्न प्रकार हैं—

(i) **राजनीतिक विचारक**—कुछ राजनीतिक विचारकों ने राजनीतिक सिद्धान्त के पतन के लिए स्वयं राजनीतिक विचारकों को उत्तरदायी ठहराया है।

(ii) **अपना स्वभाव**—कब्बन ने कहा है कि राजनीतिक सिद्धान्त के पतन के लिए इसके विचारकों को दोषी नहीं ठहराया जा सकता है क्योंकि राजनीतिक चिन्तन नैतिक तथा मूल्य प्रधान है। इसके विपरीत अपने स्वभाव के कारण व नीतिशास्त्र के ह्रास के कारण इसका ह्रास निश्चित ही था।

(iii) **जनतंत्र की विजय**—पी. एच. पैट्रिक के अनुसार राजनीतिक सिद्धान्त के पतन का कारण जनतन्त्र की विजय है। **एडवर्ड शील** ने इस सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा है कि वर्तमान पश्चिमी समाज में जिन सामाजिक समूहों का सिद्धान्त पनपा है, उसके परिणामस्वरूप आज विचारधारा निराधार हो गयी है।

गलत दिशा में प्रयास

[EFFORTS IN WRONG DIRECTION]

डॉ. विवासि के अनुसार परम्परावादी (मानपरकवादी) और आधुनिकतावादी (व्यवहारवादी परकवादी) दोनों ने घोड़े को खींचने के लिए गाड़ी का प्रयोग करने की गलती की है। राजनीतिक सिद्धान्त के पराभव का कारण बंजर मानपरकवाद और रूक्ष व्यवहारपरकवाद है। राज्य विज्ञान में समसामयिक ज्ञान विशुद्ध विज्ञान के कठोर सिद्धान्तों पर खरा नहीं उतरता है। इसके अतिरिक्त यह अधिक सन्तुलित तरीकों और तकनीकों को नहीं अपनाता जो इस समय बड़ी मात्रा में सामाजिक विज्ञानों में उपलब्ध है और जो अनुसन्धान में बहुत अधिक उपयोगी सिद्ध हुई हैं।

अन्य प्रमुख विचारकों के मत

[VIEWS OF OTHER MAIN THINKERS]

राजनीतिक सिद्धान्त के पतन के सम्बन्ध में प्रमुख मत अग्र प्रकार हैं—

Scanned with CamScanner

कब्बन के विचार (Views of Cobban)

कब्बन राजनीति विज्ञान के भविष्य के सम्बन्ध में घोर निराशावादी है। उसके अनुसार राजनीति विज्ञान के ह्रास के लिए राजनीतिक वैज्ञानिक उत्तरदायी नहीं है, वरन् राजनीति विज्ञान का स्वरूप ही स्वयं उत्तरदायी है। राजनीतिक चिन्तन नैतिक व मूल्य प्रधान है। नीतिशास्त्र का ह्रास हो चुका है, अपना कुछ औपचारिक रूप से होता जा रहा है। इसी आधार पर राजनीतिक सिद्धान्त का ह्रास भी स्वाभाविक है। इसका एक प्रमुख कारण यह है कि नैतिक मूल्यों को शक्ति की राजनीति (Power Politics) में कोई स्थान प्राप्त नहीं होता।

कब्बन के अनुसार, समसामयिक राजनीतिक सिद्धान्त, 'प्रगतिशील विज्ञान' नहीं है। इसका प्रमुख कारण यह है कि यह अपने आपको नयी परिस्थितियों के प्रकाश में सुधार नहीं पाया है। यह एक घिसा हुआ सिक्का लगता है, जिसे पुनः ढाले जाने की आवश्यकता है। राजनीतिक सिद्धान्त दूसरे विश्वयुद्ध के पश्चात् की परिस्थितियों के सन्दर्भ में न तो अपने आपको सुधार पाया है और न ही अपना नवीनीकरण कर सका है। कब्बन ने कहा है, "सामाजिक जीवन की परिस्थितियाँ पिछली कुछ शताब्दियों में बहुत तेजी से अपने आपको कभी बहुत धीरे, कभी अधिक तेजी से परिवर्तित करती रही हैं और वे जो विचार प्रेषित करते हैं वे अपने पुराने अर्थ खो बैठते हैं और नये अर्थ तथा विचार अर्जित करने लगते हैं। इस कारण, राजनीतिक सिद्धान्तों का लगातार और बार-बार प्रस्तुतीकरण आवश्यक और अवश्यम्भावी दोनों होंगे जब तक राजनीतिक चिन्तन की परम्परा चलती रहेगी जो पश्चिमी सभ्यता की एक विशिष्ट विशेषता है।"

कब्बन के अनुसार राजनीतिक सिद्धान्त के पराभव के मुख्य कारण निम्न प्रकार हैं—

(1) लोकतंत्र (Democracy)—राजनीतिक सिद्धान्त सक्रिय राजनीतिक जीवन की उत्पत्ति है पर लोकतंत्र की लोकप्रिय व्यवस्था ने लोगों की जिन्दगी को विशेष तरीके से 'निष्क्रिय' बना दिया है, यद्यपि इस व्यवस्था में बहुत सक्रिय प्रकार का राजनीतिक जीवन देखा जा सकता है। अब कोई सामयिक बर्क या बेंथम नहीं है। इसका निहितार्थ यह है कि "राजनीतिक सिद्धान्त के क्षेत्र में अब कोई बौद्धिक महामानव विद्यमान नहीं है। इस प्रकार लोकतांत्रिक प्रणाली की सफलता एक विशेष अर्थ में राजनीतिक सिद्धान्त के पराभव के लिए उत्तरदायी है। लोग अपने जीवन के उद्देश्य से सन्तुष्ट लगते हैं। परिणामतः राजनीतिक जीवन प्रायः समाप्त हो गया है। यदि लोकतांत्रिक व्यवस्था में किसी राजनीतिक गतिविधि को ध्यान से देखा जाये तब यह किसी-न-किसी तरीके से सत्ता की लड़ाई का सूचक होती है, किन्तु किसी अच्छे विकल्प की खोज करने की दिशा में कोई प्रयास नहीं होता है।" कब्बन के शब्दों में, "आधुनिक जगत् में लोकतंत्र प्रभावी राजनीतिक विचार है। समसामयिक राजनीति के अधिकांश सरकार विशेष लोकतांत्रिक छत्र-छाया में अपना स्थान प्राप्त करते हैं, लेकिन यह छत्र अधिक विशाल है वे एक-दूसरे से भिड़ते हैं जिससे ऐसा लगने लगता है कि छत्र में से पानी बुरी तरह टपक रहा है और भावी लोकतन्त्र के सिद्धान्तशास्त्री कहाँ हैं, राजनीतिक सिद्धान्त का बचाव यह अभिचार-सा बन गया है। यह सर्वत्र राजनीतिक कोष खोजने वालों का सुगम उपाय-सा बन गया है। दुनिया [illegible] से भरी पड़ी है, जो लोकतन्त्र का राग अलापते रहे हैं।"

(2) **परिवर्तित परिस्थितियों के अनुरूप ढालने में अक्षमता** (Incapability to Adjust to the Changed Conditions)—सामाजिक जीवन स्थिर न होकर सदैव

परिवर्तित होता रहता है। सामाजिक जीवन के परिवर्तित होने के कारण राजनीतिक जीवन भी परिवर्तित होता रहता है। राजनीतिक चिन्तन का अस्तित्व केवल तभी अवस्था में बना रह सकता है जब यह परिवर्तित होती हुई सामाजिक और राजनीतिक परिस्थितियों का चिन्तन कर सके। यदि राजनीतिक चिन्तन तत्कालीन परिवर्तित होती हुई सामाजिक-राजनीतिक परिस्थितियों का चिन्तन करने में असमर्थ रहता है तब यह मृतप्राय हो जाता है। कब्बन के शब्दों में, "राजनीतिक चिन्तन तभी प्रभावशाली रहता है, जब उसका बदलते सामाजिक सन्दर्भ में पुनः विश्लेषण और पुनः निर्माण होता रहता है।"

कब्बन का मत है कि राजनीतिक चिन्तन में वर्तमान में परिवर्तित होती हुई सामाजिक जीवन की परिस्थितियों में स्वयं को ढालने का और उसके अनुरूप परिवर्तित होने का सर्वथा अभाव है। वर्तमान राजनीतिक विद्वानों का यह प्रयास है कि परम्परागत राजनीतिक चिन्तन को ही जीवित रखा जाये। वे यह सत्य भूल गये हैं कि आधुनिक परिवर्तित परिस्थितियों में विगत परम्परागत राजनीतिक चिन्तन का मूल्य शून्य हो गया है।

(3) **सत्ता की संकल्पना से जोड़ने का प्रयास** (Effort to Link with the Conception of Authority)—आधुनिक युग में राजनीतिक सिद्धान्त के ह्रास में जिस अन्य कारक ने अपनी भूमिका निभायी है, वह कुछ महान् लेखकों और सिद्धान्तशास्त्रियों का इसे अभिन्न रूप में सत्ता की संकल्पना से जोड़ने का प्रयास है। इटली के मैकियावली और इंग्लैण्ड के हॉब्स ने यही कार्य किया। जर्मनी के मैक्स वेबर ने इसे पुनः प्रस्तुत किया। बोसां, पेरो, बर्ट्रेण्ड डी जुविनेल, बर्ट्रेण्ड रसेल, ई. एच. कार, राइनहोल्ड नाइबुर, हेराल्ड लासवेल और एच. जे. मॉर्गेन्थो आदि सभी महान् विभूतियों को राजनीतिक जीवन के जिस लक्षण ने आकृष्ट किया है वह राज्य को सत्ता के रूप में देखना है। उन्होंने सत्ता की संकल्पना एक प्रकार की विद्युत शक्ति के रूप में की है। यह विद्युत शक्ति कभी विस्तृत होती है और कभी केन्द्रभूत। यह शक्ति न केवल समाज में संचरित होती है, बल्कि उसका एकमात्र सार तत्त्व भी है। कब्बन ने दुःख प्रकट करते हुए कहा है कि राजनीति के अध्ययन में मूल्यों की स्थिति को राजनीति के शक्ति सिद्धान्त की वेदी पर चढ़ा दिया गया है जिसकी पहली असभ्य अभिव्यक्ति मैकियावली की रचनाओं में पायी जाती है और जिसकी पुनः पुष्टि मॉर्गेन्थो, नाइबुर और ओ. वाई. गैसेट की हाल की रचनाओं में दृष्टिगोचर होती है।

(4) **सनकी निराशावाद** (Cynical Pessimism)—राजनीतिक सिद्धान्त के ह्रास का एक कारण सनकी निराशावाद की पुष्टि है जो राजनीति के किसी भी विचारयुक्त विवेचन में नैतिकता के स्थान की उपेक्षा करता है और यह स्वीकार करता है कि किसी-न-किसी रूप में बुराई में से अच्छाई उत्पन्न होगी। कब्बन के शब्दों में, "आज का राजनीतिक सामाजिक गतिकी और सत्ता की राजनीति में कार्यों के ऊपर मूल्यों को प्राथमिकता देने वाला नहीं है। यदि अतीत में राजनीतिक सिद्धान्त अधिक लोकप्रिय हुआ तो इसका यह कारण था कि यह नैतिकशास्त्र या आचारशास्त्र की शाखा के रूप में जीवित था। इसके विपरीत आधुनिक राज्य विज्ञान में आज इस विषय पर कोई चर्चा नहीं होती कि इसे कैसा होना चाहिए ? और मेरे विश्वास में, इसका यह कारण है कि यह विचारों के दो तरीकों में दब गया है जिनका इनकी नैतिक अन्तर्वस्तु पर घातक प्रभाव पड़ा है, वे हैं इतिहास और विज्ञान और उन्होंने आधुनिक मस्तिष्क पर अधिकार जमा लिया है।"

Scanned with CamScanner

(5) इतिहासवाद (Historicism)—कब्बन ने इतिहासवाद की आलोचना की है। इतिहासकार सभी विचारों और व्यवहार के तरीकों को ऐतिहासिक दृष्टि से अनुकूलित और ऐतिहासिक दृष्टिकोण को राजनीति के सत्य अधिक पाता है। राजनीति के अध्ययन के प्रति ऐतिहासिक दृष्टिकोण का मुख्य सम्बन्ध सिद्धान्त की पुष्टि मात्र जाना चाहिए। इसका कारण यह है कि इतिहासकार का मुख्य सम्बन्ध राजनीतिक घटनाओं के निर्धारण में सत्ता की भूमिका से है। कब्बन ने कहा है कि, "राजनीतिक सिद्धान्त में इतिहास स्वतः केवल यदि नैतिक सापेक्षवाद को जन्म दे सकता है। यदि सारे इतिहासकार स्वयं नैतिकवादी नहीं हैं तो इसका यही कारण है कि वे किसी अन्य स्रोत से राजनीतिक आदर्श प्राप्त करते हैं और उन्हें इतिहास में रखते हैं। यह कथन पर्याप्त है कि कम-से-कम आधुनिक इतिहासकारों में यह प्रवृत्ति है कि वे नैतिक निर्णय को अवैध प्रक्रिया मानते हैं जिसके विरुद्ध ऐतिहासिक अनुशासन को सुरक्षा का उपाय होना चाहिये।"

(6) व्यावहारिकता का अभाव (Lack of Practicability)—राजनीति के अध्ययन को मात्र शैक्षणिक अध्ययन का मामला बना दिया गया है, अतीत में राजनीतिक सिद्धान्त आवश्यक रूप में व्यावहारिक था। उस समय राजनीतिक सिद्धान्तशास्त्री स्वयं में दलीय व्यक्ति था। स्वयं पार्टी के लोग भी इस बात से भयभीत नहीं होते थे कि वे अपने व्यवहार को सिद्धान्त के तत्व के साथ मिलायें। अतीत में राजनीतिक सिद्धान्त का अध्ययन ऐसे लोगों का कार्य होता था जो व्यावहारिक विषयों से गहन रूप से सम्बन्धित होते थे। आज यह एक शैक्षणिक विषय बन गया है। राज्य विज्ञान सिद्धान्त से पृथक् हो गया है, जैसा अतीत में कभी नहीं हुआ। कब्बन ने चेतावनी देते हुए कहा है कि राजनीतिक सिद्धान्तशास्त्री अतीत के महान् राजनीतिक विचारकों के बारे में अध्ययन कर सकते हैं, लेकिन शैक्षिक निष्पक्षता के नाम पर उन्हें सावधानीपूर्वक वह सब करने से बचना चाहिए जो उन्होंने अभी तक किया है।

(7) दिशा का अभाव (Lack of Direction)—समसामयिक राजनीतिक सिद्धान्त में दिशा के भाव का अभाव है। इसके ध्येय की कोई भावना नहीं है। हीगलवादी राजनीति मृत हो चुकी है। मार्क्सवादी राजनीति को सत्ता के अनुसरण के लिए द्वन्द्वात्मक समर्थन के रूप में अधिकाधिक प्रस्तुत किया जा रहा है। व्यवहारपरकवाद की स्पर्धा ने तथ्यों और मूल्यों के मध्य व्यापक खाई बना दी है। परिणामतः अपने राजनीतिक आधार को न्यायोचित ठहराने हेतु किसी विवेकशील सिद्धान्त के अभाव में शासित समुदाय में राजनीतिक गतिविधि का सही प्रयोग भी सत्ता की राजनीति के विवेकविहीन सिद्धान्त से ग्रस्त हो गया है।

(8) राजनीतिक चिन्तन में अन्तर्निहित कमियाँ (Inherent Shortcomings in Political Theory)—आधुनिक राजनीतिक चिन्तन अनेक प्रकार की कमियों से ग्रस्त है। इन कमियों का प्रमुख कारण राजनीतिक चिन्तन की विचारधारा पर इतिहास तथा विज्ञान का प्रभाव है। इसके परिणामस्वरूप आधुनिक राजनीतिक सिद्धान्त वर्तमान जीवन के सम्बन्ध में अपने मूल्यों का स्पष्टीकरण प्रस्तुत नहीं करता। राजनीति वैज्ञानिक एक वैज्ञानिक की भाँति घटनाओं को कारण और प्रभाव (Cause and Effect) के सूत्र में बाँध देता है। उसका अध्ययन 'किन कारणों का परिणाम होता है' तक ही सीमित रहता है। वह नैतिक निर्णय नहीं दे पाता। परम्परागत राजनीतिक विचारक अपने सम्मुख कतिपय व्यावहारिक उद्देश्य को रखकर ही चिन्तन करते थे पर आधुनिक राजनीतिक विचारक एक वैज्ञानिक की भाँति तथ्यों के संकलन में उलझे रहते हैं।

ईस्टन के विचार (Easton's Views)

ईस्टन के मतानुसार राजनीतिक सिद्धान्त का पतन हो चुका है। इसके लिए उत्तरदायी प्रमुख कारण निम्न हैं—

(i) राजनीतिक सिद्धान्त परम्परागत पिटे-पिटे विचारों पर आधारित है।

(ii) राजनीतिक सिद्धान्त नवीन संश्लेषण विकास के कार्य-क्षेत्र में असमर्थ रहा है।

(iii) राजनीति विज्ञान दिशाविहीन, अति यथार्थवादी और इतिहासपरकता का शिकार हो गया है। डनिंग, मैकलेवेन, सेबाइन आदि राजनीतिशास्त्री भी इस प्रवृत्ति के शिकार हो गये हैं। उन्होंने राजनीतिशास्त्र को इतिहास का मुखौटा मानकर उसे पतन की ओर धकेला है।

(iv) राजनीतिशास्त्र या तो तथ्यों और आँकड़ों का ढेर लगाने में व्यस्त है अथवा वह अपरिपक्व नीति विज्ञान बनने का असफल प्रयास कर रहा है। अमरीका के राजनीतिज्ञ भी यथातथ्य और अतीत से बँधे हुए हैं।

(v) राजनीतिक सिद्धान्त कारण-प्रभाव (Cause-Effect) सिद्धान्त तथा कुछ ऐतिहासिक टिप्पणियों पर आधारित है। राजनीतिवेत्ता सदियों पुराने गये-बीते विचारों से चिपके हुए हैं तथा एक नवीन राजनीतिक संश्लेषण अथवा सिद्धान्त प्रदान करने में असमर्थ हैं।

(vi) राजनीतिशास्त्रियों ने इस मान्यता को अपना लिया है कि राजनीतिक सिद्धान्त व विचार तत्कालीन घटनाओं, संस्थाओं व सामाजिक परिवेश से सम्बद्ध हैं और इन पर आश्रित हैं। ईस्टन के अनुसार, "एक सृजनात्मक राज सिद्धान्त को कदापि भी विकसित नहीं किया जा सकता। इस प्रवृत्ति को इतिहास की दासता की संज्ञा दी जा सकती है।"

वर्गीकरण (Classification)—ईस्टन ने समकालीन इतिहासवादी राजवेत्ताओं को निम्न चार वर्गों में रखा है—

(1) **संस्थावादी** (Institutionalists)—इन विचारकों में कार्लाइल व मैकलेवेन मुख्य हैं। उन्होंने संस्थाओं के विकास में तथा राजनीतिक हितों का औचित्य ठहराने वाले विचारों के इतिहास में रुचि प्रकट की है। परिणामतः राजनीतिक सिद्धान्त 'बौद्धिकीकरण' मात्र बनकर रह जाता है।

(2) **अन्तः क्रियावादी** (Interactionalists)—इस वर्ग में ग्रोन आदि विचारक आते हैं। कार्लाइल भी कभी-कभी इस वर्ग में आ जाता है। इन विचारकों ने विचारों व संस्थाओं के मध्य अन्तः क्रिया तथा इस अन्तः क्रिया के प्रत्येक अवस्था में सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया पर पड़ने वाले प्रभाव का विश्लेषण किया है। इन विचारकों के अनुसार नवीन मूल्यों व सिद्धान्त निर्माण का कोई भी महत्त्व नहीं है।

(3) **भौतिकवादी** (Materialists)—इस वर्ग में डनिंग, सेबाइन व अन्य विचारक आते हैं। इन विचारकों ने प्रत्येक युग के राजनीतिक चिन्तन को प्रभावित करने वाली ऐतिहासिक व सांस्कृतिक दशाओं, परिस्थितियों आदि की विवेचना की है। ये विचारक मूल्य सापेक्षवादी हैं तथा ज्ञान को परिस्थितिजन्य मानते हैं।

(4) **मूल्यवादी** (Value-Priorists)—इस वर्ग में लिडसे आदि विचारक आते हैं। ये विचारक कतिपय मूल्यों में आस्था रखते हैं। यह एक प्रचारात्मक और आत्मनिष्ठ दृष्टिकोण है।

उपरोक्त विचारक राजनीतिक सिद्धान्त के पराभव के लिए उत्तरदायी हैं। इसका प्रमुख कारण यह है कि वे नवीन मूल्य सिद्धान्त के निर्माण व विकास में रुचि नहीं रखते। उन्हें केवल समकालीन और अतीतकालीन मूल्यों के ऐतिहासिक विकास में ही रुचि है। इस प्रकार के दृष्टिकोण से राजनीति विज्ञान में नवीन सिद्धान्तों का निर्माण नहीं किया जा सकता।

प्रमुख कमजोरियाँ (Main Weaknesses)—उपरोक्त विचारकों की धारणाओं का विवेचन करने पर इन विचारकों की प्रमुख कमजोरियाँ निम्न प्रकार स्पष्ट होती हैं—

(1) **रचनात्मक प्रयोग नहीं (Not Constructive Use)**—ये विद्वान अपने विस्तृत ज्ञान भण्डार को रचनात्मक उद्देश्यों की पूर्ति में लगाने में रुचि नहीं रखते।

(2) **ऐतिहासिकता (Historicity)**—ये विचारक परम्परागत राजनीतिक विचारों से जाते समय केवल उनके अर्थ स्पष्ट करने तथा उनकी आन्तरिक संगति तथा ऐतिहासिक विकास की व्याख्या करने में ही व्यस्त रहते हैं।

(3) **सापेक्षता (Relativity)**—इन विचारकों की मान्यता है कि समस्त विचार अपनी समकालीन ऐतिहासिक परिस्थितियों में अवस्थित होते हैं। इसके अतिरिक्त समस्त नैतिक व कल्पनात्मक विचार शुद्ध रूप से सापेक्ष होते हैं।

(4) **चिन्तनात्मक वांछनीयता की उपेक्षा (Contemplating Desirability Neglected)**—ये विचारक वैकल्पिक लक्ष्यों अथवा चिन्तनात्मक वांछनीयता पर विचार नहीं करते।

ईस्टन के अनुसार राजनीतिक सिद्धान्त ह्रास के दो मुख्य कारण हैं—

(1) **ऐतिहासिक विचारों पर निर्भरता (Dependence on Historical Ideas)**—ऐतिहासिक विचारों पर निर्भर रहने के कारण राजनीतिक सिद्धान्त की मानसिक सृजन शक्ति पराजित हो गयी है।

(2) **ऐतिहासिक पद्धति (Historical Method)**—केवल ऐतिहासिक पद्धति का प्रयोग करने के कारण वर्तमान राजनीतिक चिन्तक राजनीतिक व्यवहार से सम्बन्धित व्यवस्थात्मक सिद्धान्त निर्मित नहीं कर सके हैं। ईस्टन के शब्दों में, "अन्य सामाजिक विज्ञान, जैसे—अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र और मनोविज्ञान काफी विकसित हैं। इसका कारण यह है कि वे व्यवहारात्मक पद्धति अपना चुके हैं। वे अपनी ऐतिहासिकता पर अधिक बल नहीं देते हैं।"

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि ईस्टन उन कुछ कारकों पर प्रकाश डालता है जिन्होंने राजनीतिक सिद्धान्त के पराभव में योगदान दिया है। तत्पश्चात् वह एक संकल्पनात्मक ढाँचे का सुझाव देता है जिससे राजनीतिक सिद्धान्त पूर्णतया व्यवहारपरक हैं, जिसमें वास्तविक रूप में मूल्य-धारित ढाँचा भी है जो राजनीतिक सिद्धान्त को 'रचनात्मक' बना सकता है और इसे एक 'बृहद् पास सिद्धान्त' का स्वरूप प्रदान करता है। ईस्टन ने निष्कर्ष के रूप में कहा है कि, "अब मेरा तर्क यह है कि अपने नये राजनीतिक मूल्यों का विश्लेषण और निर्माण करने में सहायता देने के कार्य के अतिरिक्त राज्य विज्ञान में राजनीतिक सिद्धान्त को व्यवहारपरक अनुसन्धान के मूल क्षेत्रों को संकल्पनात्मक बनाने में उतने ही महत्त्वपूर्ण कार्य करने में सहायता देनी चाहिए। इसे दो समवर्ती और समान्तर तरीकों से ऐसा कार्य करना चाहिए, एक राज्य विज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों में जो हमारे पास सीमित साधारणीकरण हैं, उनका संश्लेषण और संहिताकरण करके एवं परिणमित सिद्धान्त को इस प्रकार बनाकर कि इसका सत्यापन किया

जा सके एवं इसे अवैध ठहराया जा सके; और दूसरे राज्य विज्ञान के समस्त विषय के उपयोग-योग्य संकल्पनात्मक ढाँचे की व्याख्या करने के महान् कार्य का प्रयास करके। इस प्रकार, राजनीतिक सिद्धान्त के लिए यह सम्भव होगा कि वह राज्य विज्ञान के व्यवहारपरक अनुसन्धान की मुख्य धारा से अपना आत्मसात करे और फिर उस निष्फल ऐतिहासिक अध्ययन के पश्चात् अपने आपको पुनः जीवित करे जिसमें यह पिछले पचास वर्षों से लगा हुआ है।"

निस्बत के विचार (Nisbat's Views)

निस्बत ने पश्चिमी औद्योगिक समाज की बुराइयों तथा उसके राजनीति सिद्धान्त पर प्रभाव का विवेचन किया है। उसका कथन है कि इन समस्याओं का समाधान केवल राजनीतिक बहुलवाद द्वारा ही सम्भव है। इस सन्दर्भ में निस्बत के विचारों में एक विरोधाभास स्पष्ट होता है। यह विरोधाभास निम्न प्रकार है—

(i) उसका निदान उग्र है।

(ii) उसके द्वारा प्रतिपादित किये गये उपचार उग्र न होकर क्रान्तिकारी हैं।

दुर्खीम के विचार (Durkheim's Views)

दुर्खीम के अनुसार दर्शनशास्त्रीय परम्पराएँ अमनोवैज्ञानिक हैं। सामाजिक क्रिया को वस्तुओं के तुल्य समझा जाना चाहिए।

डॉ. विवासि का मत (Opinion of Dr. Vibasi)—राजनीतिक दार्शनिकों की महान् परम्परा का अवसान दृष्टिगोचर होने लगा है। डॉ. विवासि का कथन है कि, "डेविड ईस्टन, अल्फ्रेड कब्बन तथा अनेक आधुनिक राजवैज्ञानिकों की धारणा है कि उस राजनीतिक सिद्धान्त की, जिसका सम्बन्ध वे राजनीतिक दर्शन से जोड़ते हैं, परम्परा का तीव्र गति से ह्रास हो रहा है। डेविड ईस्टन और अल्फ्रेड कब्बन आदि विद्वानों ने राजनीतिक सिद्धान्त के ह्रास के सम्बन्ध में कहा है। पीटर लासलेट तथा रॉबर्ट ए. डहल ने तो राज सिद्धान्त की मृत्यु की घोषणा भी कर दी है। ऑक्सफोर्ड जैसे स्थानों पर, जहाँ परम्परागत राजनीतिक सिद्धान्त का पालन-पोषण हुआ था, यह सुना जाता है कि राजनीतिक सिद्धान्त मृतप्राय: हो चुका है अथवा पराभव की प्रक्रिया से गुजर रहा है। इसके समर्थन में यह तर्क दिया जाता है कि कार्ल मार्क्स, जे. एस. मिल तथा लास्की के बाद आज तक कोई भी उल्लेखनीय राजनीतिक दार्शनिक नहीं हुआ है।"

राजनीतिक सिद्धान्त के ह्रास या पतन के प्रमुख कारण

[MAIN CAUSES OF DECLINE OF POLITICAL THEORY]

विभिन्न राजनीतिक सिद्धान्तशास्त्रियों के विचारों का अध्ययन कर राजनीतिक सिद्धान्त के ह्रास या पतन के लिए उत्तरदायी प्रमुख कारणों को निम्न प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है—

(1) **राजनीति विज्ञान का आविर्भाव**—राज सिद्धान्त के पराभव का प्रथम कारण राजनीति विज्ञान का आविर्भाव है। इसके कारण अनेक व्यवहारवादी अध्ययन दृष्टिगोचर होते हैं, जिनकी वैज्ञानिकता का आधार नयी अनुभववादी प्रविधि है।

(2) **दार्शनिक तत्त्व का अभाव**—राजनीतिक शोध के कारण कल्पना, नैतिकता, सौन्दर्य बोध आदि दार्शनिक-तत्त्व-चिन्तन की प्रभावशीलता कम होने लगी है। अब मूल्य निरपेक्ष राजनीतिक सिद्धान्त का महत्त्व बढ़ने लगा है। राजनीतिक दर्शन को राजनीति विज्ञान से पृथक्

Scanned with CamScanner

राजनीति विज्ञान राजनीतिक दर्शन की बेड़ियों से अपनी उन्मुक्तता
करना साल हो गया है। राजनीति विज्ञान राजनीतिक दर्शन की बेड़ियों से अपनी उन्मुक्तता
की घोषणा करने का प्रयास कर रहा है।

(3) **तथ्यपरक सिद्धान्त**—राजनीतिक सिद्धान्त के निर्माण की प्रवृत्ति बढ़ने के कारण
शास्त्रीय स्वरूप वाले राज सिद्धान्त का पतन हुआ है।

(4) **इतिहासवाद**—आधुनिक राजनीतिशास्त्री अपना सम्पूर्ण समय नव-चिन्तन के
विश्लेषण, विवेचन एवं वर्णन में लगाते हैं। इस इतिहासवाद से राज सिद्धान्त का पराभव
हुआ है।

(5) **रचनात्मक भूमिका का त्याग जाना**—डॉ. एस. पी. वर्मा के अनुसार कुछ अपवादों
को छोड़कर 20वीं शताब्दी में राजनीतिक सिद्धान्त ने अपनी भौतिक भूमिका छोड़ दी। प्लेटो
व अरस्तू से लेकर 19वीं शताब्दी तक राजनीतिक सिद्धान्त की भूमिका रचनात्मक रही, जिसका
अर्थ यह था कि राजनीतिक चिन्तक अपने समय की घटनाओं का यथार्थ मूल्यांकन कर यह
निर्देशित करते थे कि सामाजिक-राजनीतिक घटनाओं को किस दिशा में योग देना चाहिए।
दूसरे शब्दों में राजनीतिक विज्ञान को किस दिशा में परिवर्तित करें कि अच्छा राजनीतिक जीवन
सम्भव हो सके। राजनीतिक सिद्धान्त का स्थान अब राजनीतिक विचारों के इतिहास ने ले
लिया और उसने उपयुक्त रचनात्मक भूमिका का त्याग कर दिया।

(6) **नैतिक मूल्यों का परित्याग**—परम्परागत राजनीतिक सिद्धान्त के चिन्तक भी
पूर्ववर्ती चिन्तकों के विचारों का अध्ययन करते थे पर उस अध्ययन का ध्येय ज्ञान अर्जित करना
था। वे यह ज्ञात करने का प्रयास करते थे कि पूर्ववर्ती चिन्तन में नैतिकता और औचित्य के
मापदण्ड क्या है ? वे इस ज्ञान का प्रयोग भी करते थे। वे यह निर्देशित करते थे कि
राजनीतिक और सामाजिक जीवन कैसे अच्छा बनाया जाये ? इसके विपरीत 20वीं शताब्दी
में राजनीतिक सिद्धान्त का ध्येय यथार्थ जीवन के सन्दर्भ में अच्छा जीवन निर्देशित करना न
होकर पूर्ववर्ती राजनीतिक मूल्यों का ऐतिहासिक विकास, अर्थ तथा तर्क संगति आदि बताना
है। मूल्यों की इस ऐतिहासिक और समाजशास्त्रीय दृष्टि ने परम्परागत राजनीतिक सिद्धान्त तथा
राजनीतिक मूल्यों के सिद्धान्तों को निष्प्राण बना दिया है।

(7) **अति तथ्यवाद**—20वीं शताब्दी को अति तथ्यवाद का युग कहा जा सकता है।
इससे राजनीतिक सिद्धान्त की प्रतिष्ठा कम हो गयी। अधिकाधिक विद्वान इन्द्रियानुभविकवाद
को अपनाने लगे। इन्द्रियानुभविकवाद अनुसन्धान भी तथ्यवाद का पर्यायवाची बन गया है।
अधिक से अधिक तथ्य एकत्रित किये जाने लगे। दो तथ्यों और घटनाओं के मध्य सम्बन्ध
स्थापित करने का प्रयत्न भी किया गया। नये चरों की खोज की गयी जिससे किसी परिघटना
की अधिकाधिक अच्छी व्याख्या की जा सके तथापि इस खोज के अधिकांश परिणाम प्रथम
स्तर के सामान्यीकरण से ऊपर नहीं उठ सके। अतएव यह शोध एवं अध्ययन तथ्यों की खोज
मात्र रह गया है। कुछ लोग इसे अतितथ्यवाद की संज्ञा देते हैं। व्यवहारवादी क्रान्ति के पूर्व
जैसे-जैसे इस तथ्यवादी धारा का अधिकाधिक प्रयोग होने लगा, उसी मात्रा में राजनीतिक
सिद्धान्त की भी प्रतिष्ठा कम होने लगी।

(8) **विचारधाराओं का प्रभाव**—जर्मीनो आदि राजनीतिशास्त्री राजनीतिक सिद्धान्त के
पतन का कारण 20वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में विचारधाराओं या वाद (Ideology) के बढ़ते हुए
प्रभाव को मानते हैं।

निष्कर्षतः 20वीं शताब्दी में परम्परावादी राजनीतिक सिद्धान्त का पतन होने लगा और
परम्परागत राजनीतिक सिद्धान्त का स्थान एक ओर तो राजनीतिक विचारों के इतिहास ने ले
लिया जिसे हम ऐतिहासिकवाद (Historicism) कहेंगे, दूसरी ओर विज्ञान के नाम पर
असिद्धान्त स्थापित हुआ, जिसने सिद्धान्त के स्थान पर तथ्यों को अधिक महत्त्व दिया, इस
प्रवृत्ति को अतितथ्यवाद कहते हैं। इसी प्रकार कुछ राजनीतिक सिद्धान्त को प्रयुक्त
(Applied) विज्ञान का पर्यायवाची मानने लगे। वे शुद्ध विज्ञान और प्रयुक्त विज्ञान में अन्तर
न कर सके। इस प्रवृत्ति को नीति विज्ञानवाद या सुधारवादी प्रवृत्ति भी कहा जाता है। इस
प्रकार ऐतिहासिकवाद, अतितथ्यवाद तथा नीति विज्ञानवाद के कारण 20वीं शताब्दी में
राजनीतिक सिद्धान्त के मूल रूप का पराभव हो गया।

कुछ आलोचकों के अनुसार पुरातनशास्त्रीय राजदर्शन की परम्परा एकदम समाप्त नहीं
हुई है। वास्तविकता यह है कि पश्चिम में इसका प्रभाव सीमित और मन्द हुआ है पर पूर्व में
परम्परावादी राजदर्शन अतिशय उग्र और आक्रामक हो गया है। पश्चिम में परम्परावाद विज्ञान
और व्यवहारवाद के कारण कमजोर हुआ है। इसके विपरीत, पूर्व में धर्म एवं दर्शन के प्रभाव
तथा विज्ञान एवं व्यवहारवाद के अभाव के कारण यह प्रबल हुआ है। वर्तमान में भी पश्चिम
में परम्परावादी राजसिद्धान्तों की निरन्तरता के प्रतिनिधि विचारक **माइकेल ओकशॉट, हन्ना
आरेन्ट, जुवेनल लिओ स्ट्रास, इरिक वोगेलिन** आदि माने जाते हैं। इन्होंने दार्शनिक एवं
मूल्यात्मक चिन्तन का समर्थन एवं प्रतिपादन करने के साथ-साथ उस ओर नवीन दिशाओं में
भी चिन्तन किया है।

आधुनिक राजनीतिक सिद्धान्त की कमियाँ
[SHORTCOMINGS OF MODERN POLITICAL THEORY]

यदि परम्परागत राजनीतिक सिद्धान्तों से हटकर नवीन विधियों, प्रविधियों तथा
दृष्टिकोणों का अध्ययन किया जाता है, तो राजनीतिक सिद्धान्त में अनेक कमियाँ दिखायी देती
हैं, जो निम्न प्रकार हैं—

(1) **वैज्ञानिक कौशल के विकास का अभाव** (Lack of Development of
Scientific Skills)—राजनीति विज्ञान में उस वैज्ञानिकता को स्थान नहीं मिल पाया है
जिनका सम्बन्ध वैज्ञानिक उपकरणों, विधियों, प्रविधियों तथा वैज्ञानिक उपागमों से है।
राजनीतिक सिद्धान्तों में अभी तक वैज्ञानिक सिद्धान्तों के समान व्यक्ति का विकास नहीं हो
पाया है अर्थात् भूतकाल के अनुभवों से लाभ उठाकर उसकी पूर्ण व्याख्या करके गुणों को
अभी तक नहीं अपनाया गया है। यही कारण है कि राजनीति विज्ञान में अभी तक वैज्ञानिकता
के विकास की कमी है।

(2) **प्राकृतिक विज्ञान का होना असम्भव** (To be Natural Science not
possible)—राजनीति विज्ञान में कतिपय विद्वान इस प्रकार के भी हैं जो मानते हैं कि
राजनीति विज्ञान किसी भी दशा में एक प्राकृतिक विज्ञान नहीं हो सकता, क्योंकि राजनीति
विज्ञान की विषय-सामग्री भिन्न है। उसमें प्राकृतिक विज्ञान के सूत्र दिखायी नहीं देते हैं। कुछ
विद्वानों का कहना है कि वैज्ञानिक प्रणालियों का पूर्ण रूप से पालन करना राजनीतिक विज्ञान
के वश के बाहर है। **रॉबर्ट डहल** (Robert Dahal) ने लिखा है, "राजनीति अध्ययन न तो
शुद्ध रूप से वैज्ञानिक हो सकता है और न ही उसे होना चाहिए। राजनीतिक अध्ययन में

Scanned with CamScanner

आवश्यक वस्तुपरक दृष्टिकोण की कमी है। राजनीति विज्ञान को विज्ञान मान देने मात्र से वह विज्ञान नहीं बन जाता। उसे अपनी वैज्ञानिकता ठोस उपलब्धियों के आधार पर प्रमाणित करनी होगी।"

(3) राजनीति में वैज्ञानिक सिद्धान्तों की कमी (Lack of Scientific Theories in Politics)—राजनीति विज्ञान में वैज्ञानिक सिद्धान्त देखने को नहीं मिलते हैं। रॉबर्ट डहल (Robert Dahal) के शब्दों में, "राजनीतिक सिद्धान्त अंग्रेजी भाषा-भाषी देशों में मृत हो चुका है, साम्यवादी देशों में वह बन्दी है तथा अन्य देशों में वह मरणासन्न है।" मेयो (Mayo) ने कहा है, "विभिन्न (राजनीतिक) सिद्धान्त अपूर्ण हैं, क्योंकि उनमें कोई भी पूर्ण व्यवस्था से सम्बन्धित नहीं है।" राजनीति विज्ञान में इस अवैज्ञानिकता के कारण अनेक त्रुटियाँ दृष्टिगोचर होती हैं।

(4) मूल्यों की समस्या (Problem of Values)—आधुनिक राजनीतिक सिद्धान्त के लिए मूल्यों की भी एक समस्या है। मूल्यों के कारण राजनीति के विद्वान् अनेक वर्गों में बँट गये हैं। पहला वर्ग इस बात को चाहता है कि राजनीति विज्ञान को मूल्य-निरपेक्ष बना दिया जाये। दूसरा वर्ग इस प्रकार के राजनीतिक विचारकों का है जो मूल्यों को महत्वपूर्ण स्थान प्रदान करने का इच्छुक है। तीसरा वर्ग दोनों विचारकों के मध्य का मार्ग अपनाना चाहता है। इस दृष्टि से प्रथम वर्ग को अनुभववादी, दूसरे को पराअनुभववादी (Trans-Empiricist) तथा तीसरे को समन्वयवादी कहा जाता है। तीसरा वर्ग तो दावे के साथ कहता है कि राजनीति का अध्ययन कभी वैज्ञानिक हो ही नहीं सकता। इस प्रकार, मूल्यों के सम्बन्ध ने वैज्ञानिकता की कमी सदैव बनी रहती है।

(5) सामान्य राजनीतिक सिद्धान्त सम्भव नहीं (No Possibility of a General Political Theory)—राजनीति विज्ञान में वास्तव में सामान्य राजनीतिक सिद्धान्त का निर्माण सम्भव नहीं है। उसका कोई विशेष महत्व भी नहीं है। इस प्रकार के विचार प्रकट करने वाले विचारकों का कहना है कि सामान्य सिद्धान्त का विचार सैद्धान्तिक क्षेत्र में तो खरा उतर सकता है किन्तु व्यावहारिक क्षेत्र में वह कारगर नहीं है। इसका प्रमुख कारण यह है कि राजनीतिक सिद्धान्त की विषय-वस्तु मानव है जिसका आचरण और प्रकृति परिवर्तनशील है। यह परिस्थितियों तथा आयु के अनुसार बदलती रहती है। इस दृष्टि से यह कहा जा सकता है कि सामान्य राजनीतिक सिद्धान्त का निर्माण कठिन है।

(6) पद्धति सम्बन्धी नवीन समस्या (Method Related New Problem)—यदि एक ओर राजनीतिक सिद्धान्त के निर्माण में वैज्ञानिक पद्धति की कमी है, तो दूसरी ओर उसके विकास में वैज्ञानिक पद्धति का अधिकाधिक प्रयोग भी समस्या उत्पन्न करता है। इसका कारण यह है कि सिद्धान्त को आधुनिकता के रंग में रंगने के लिए उसमें अनेक कमियाँ आ गयी हैं। उदाहरण के लिए, डेविड ईस्टन (David Easton) का सिद्धान्त व्यावहारिक तथा व्यापक होते हुए भी आनुभविक नहीं है।

(7) अन्य विज्ञानों से सम्बन्ध (Relation with other Sciences)—राजनीतिक सिद्धान्त के द्वारा राजनीति विज्ञान का सम्बन्ध अन्य विद्वानों से स्थापित करना भी आवश्यक है ताकि उनमें अनुसन्धान की स्थापना हो सके, परन्तु इन उद्देश्यों को पूरा करने के लिए राजनीति विज्ञान को सिद्धान्तों की सीमाओं में बाँधना भी आवश्यक नहीं है।

(8) राजनेताओं तथा राजनीति विज्ञान के विद्वानों में सम्पर्क का अभाव (Lack of Contact between Political Leaders and Scientists)—राजनीति विज्ञान की एक गम्भीर समस्या यह भी है कि राजनीति सिद्धान्त का निर्माण करने वाले शोधकर्ताओं से राजनीतिक नेताओं के सम्बन्ध नहीं बन पाते हैं। इसका फल यह होता है कि राजनीतिक सिद्धान्त में यथार्थ गुण तथा औपचारिकता तो आ जाती है, परन्तु सिद्धान्त की वैज्ञानिकता कम हो जाती है।

(9) विषय-सामग्री परिवर्तनशील (Changeable Subject-matter)—राजनीति विज्ञान की विषय-सामग्री एक-सी नहीं रहती। वह परिवर्तित होती रहती है। इसका परिणाम यह होता है कि वर्तमान यथार्थवादी सिद्धान्त कालान्तर में अयथार्थवादी बन जाता है। इससे एक गम्भीर समस्या उत्पन्न हो जाती है।

(10) तार्किक संकल्पनाओं का अभाव (Lack of Logical Conceptions)—आधुनिक राजनीतिक सिद्धान्त में अभी तक तार्किक अवधारणाओं या संकल्पनाओं की कमी है। इस कारण राजनीतिक विश्वसनीयता पर अभी तक प्रश्न-चिह्न लगा हुआ है। हैकर (Hacker) ने लिखा है, "इस बात की कदापि भी आशा नहीं है कि अनुशासन की अपेक्षा, विषय-सामग्री, प्रणालियों तथा मूल्यों इत्यादि पर शोध कार्य सम्पन्न होकर एक राजनीतिक सिद्धान्त का निर्माण हो सके।" अभी तक तार्किक सिद्धान्त की इस कमी ने अनेक समस्याओं को जन्म दिया है।

(11) मानवीय सम्बन्धों की समस्या (Problem of Human Relations)—राजनीति विज्ञान में कुछ विषय इस प्रकार के हैं जिनके कारण आधुनिक राजनीतिक सिद्धान्त में एक समस्या बन गयी है। इन विषयों का सम्बन्ध चेतनायुक्त मनुष्यों से है, जैसे—शिक्षा, निर्धनता, अशिक्षा, संकीर्णता, रूढ़िवादिता आदि। ये विषय राजनीति विज्ञान को कुछ भी प्रदान नहीं करते हैं।

(12) उपागमों की वृद्धि की समस्या (Problem of Increasing Number)—आधुनिक राजनीतिक सिद्धान्त की एक समस्या यह भी है कि आजकल राजनीति विज्ञान में विभिन्न प्रकार के उपागमों की संख्या दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है जिसके कारण एक समस्या बन गयी है। इस समस्या में दो बातें हैं—एक तो इनकी संख्या अधिक है जिसके कारण अभी तक एक भी सर्वमान्य आधुनिक सामान्य राजनीतिक सिद्धान्त का निर्माण सम्भव नहीं हो सका है। दूसरे, इसके अन्तर्गत जितने उपागमों का प्रयोग किया जा रहा है उनमें कट्टरता (Orthodoxy) अधिक है जिसके कारण राजनीति विज्ञान में रूढ़िवादिता का समावेश हो गया है। जब विद्यार्थी राजनीति विज्ञान का अध्ययन करता है तो यह रूढ़िवादिता उसके मार्ग में बाधा उपस्थित करती है।

परम्परागत तथा आधुनिक राजनीतिशास्त्र के सम्बन्ध में रॉबर्ट डहल ने कहा है, "यह विचार करने का पूर्ण आधार है कि एकता (पारम्परिक तथा आधुनिक राजनीतिशास्त्र में) पुनः स्थापित की जा सकती है।" इस दृष्टिकोण से आधुनिक राजनीतिक सिद्धान्त पारम्परिक राजनीतिक सिद्धान्त का ही एक परिष्कृत रूप है। दोनों एक ही विषय के ऐतिहासिक विकास के दो रूप हैं। अतः दोनों दृष्टिकोणों को मिलाकर राजनीतिक सिद्धान्त का सम्पूर्ण तथा प्रौढ़ चित्र प्रस्तुत किया जा सकता है।

समाधान (Remedies)—राजनीति विज्ञान की समस्याओं का समाधान एक आधुनिक वैज्ञानिक राजनीतिक सिद्धान्त का विकास करने से ही सकता है। राजनीतिक सिद्धान्त का

✿ न्याय ✿

न्याय का अर्थ ⇒

न्याय का मुख्य उद्देश्य बिगड़े हुए संतुलन को पुनः स्थापित करना अतः समानता की स्थापना करना

सैफलस ⇒
अपने कर्ज की उचित अदायगी ही न्याय है

थ्रेसीमेकर ⇒
न्याय शक्तिशाली का हित है

ग्लुकोन ⇒
न्याय का शिशु

परम्परावादी विचारको की अवधारणा

- **सैफलस**
  1. अपने कर्ज की उचित अदायगी ही न्याय है
  2. सदा सत्य बोलना।
- **थ्रेसीमेकर**
  - न्याय शक्तिशाली का हित है।
- **ग्लुकोन**
  - न्याय का शिशु!

→ प्लेटो ने इन तीनो विचारको का खंडन किया है। और अपनी पुस्तक 'रिपब्लिक' में दो प्रकार के न्याय बताये है

प्लेटो

- सामाजिक न्याय
- व्यक्तिवादी न्याय

Scanned with CamScann

→ उसने आत्मा को तीन वर्गों में बांटा है

विवेक ⇒ शासन करेगा
साहस ⇒ रक्षा करेगा
तृष्णा ⇒ उत्पादन का कार्य करेगा

→ प्लेटो के अनुसार ⇒ अपने निर्दिष्ट कर्तव्यों का पालन करना और दूसरे के कार्यों में हस्तक्षेप नहीं करना ही न्याय

→ व्यक्तिगत न्याय के संबंध में प्लेटो का यह मानना था कि उन तीनों गुणों में एक गुण प्रमुख है और अन्य दो गुण गौण है। व्यक्ति जब अपने महान गुण के अनुसार आचरण करे तो यह व्यक्तिगत न्याय है

Imp → प्लेटो के अनुसार "न्याय सर्वोत्तम सद्गुण है"

Imp → सुकरात के अनुसार "सद्गुण ही ज्ञान है"

अरस्तु का न्याय सिद्धांत

- वितरणात्मक न्याय
- परिशोधनात्मक

→ **वितरणात्मक न्याय ⇒**

वितरणात्मक न्याय का सिद्धान्त यह है कि पद प्रतिष्ठा, पुरस्कार आदि के वितरण से है।

परिशोधनात्मक न्याय → इसका उद्देश्य समाज में बिगड़े हुए संतुलन को फिर से स्थापित करना

→ **J.S. मील ⇒** न्याय को सामाजिक उपयोगिता का सबसे महत्वपूर्ण पक्ष माना है

→ **मार्शल ⇒** मार्शल ने प्राकृतिक न्याय नामक पुस्तक में प्राकृतिक कानूनों को कानून के पीछे कानून की संज्ञा दी

→ कोई व्यक्ति स्वयं अपने मामले का न्यायाधीश नहीं हो सकता। लेकिन दोनों पक्षों की सुनवाई अवश्य की जायेगी।

वर्तमान न्याय व्यवस्था

- सामाजिक न्याय → भाईचारा
- आर्थिक न्याय → समानता
- राजनीतिक न्याय → स्वतंत्रता

→ राजनीतिक न्याय का मुख्य आदर्श स्वतंत्रता है

→ आर्थिक न्याय का मुख्य आदर्श समानता है

→ सामाजिक न्याय का मुख्य आदर्श भाईचारा है।

Scanned with CamScanner

Imp → **रॉबर्ट नॉजिक** ⇒ ने पुलिस राज्य का समर्थन किया है नॉजिक सम्पत्ति के अधिकार को मनुष्य का सबसे प्रमुख अधिकार मानता है

→ नॉजिक के अनुसार "कराधान को केवल वहीं तक उचित ठहराता है जहाँ तक वह राज्य का खर्च उठाने के लिए जरूरी है" इससे अधिक कर लगाना एक तरह की बेगारी है

Imp → रॉबर्ट नॉजिक समकालीन उदारवादी स्वेच्छातंत्र शाखा का प्रतिनिधित्व करता है

→ डेविड मिल्लर ने अपनी पुस्तक सामाजिक न्याय में तीन नियम बताये है

डेविड मिल्लर

- स्वीकृत अधिकार का संरक्षण
- योग्यता के अनुरूप वितरण
- आवश्यकता के अनुरूप वितरण

→ बेन्थम ने अपनी पुस्तक *Indrodecation to the principal of moral and legicnalion* में न्याय के उपयोगितावादी सिद्धान्त का वर्णन किया है

→ न्याय के उपयोगितावादी सिद्धान्त की प्रमुख मान्यताएं इस प्रकार है

(i) किसी कार्य के गुण दोष उसके परिणामों में निहित होते है। उसके उद्देश्य या कर्तव्य चरित्र में नहीं

(ii) इन परिणामों को प्राप्त होने वाले आनन्द ध्यान में रखकर करना चाहिए जिसे सुख और दुख का जोड़-बाकी किया जा सके

(iii) जिस सुख को प्राप्त होने वाले आनन्द की मात्रा अधिक हो उसे श्रेष्ठ सुख माना जाता है

Imp → **बेन्थम के अनुसार** ⇒ "यदि कुंचे और कविता पढ़ने से प्राप्त होने वाले सुख की मात्रा समान है तो इन दोनों में कोई अन्तर नहीं"

Imp → **J.S. मील के अनुसार** ⇒ "एक असंतोष सुकरात होना अच्छा है एक संतुष्ट मूर्ख की तुलना में"

☆ जॉन रॉल्स ☆

Imp → जॉन रॉल्स समकालीन उदारवादी विचारक था

→ जॉन रॉल्स ने अपने न्याय सिद्धान्त में उपयोगितावाद पर प्रबल प्रहार किया

→ जॉन रॉल्स का मानना है कि न्याय समाज का प्रथम सद्गुण है

→ रॉल्स ने अपने न्याय सिद्धान्त का वर्णन अपनी पुस्तक *A throry of Justice* (1971) में किया था

Scanned with CamScanner

→ रॉल्स के अनुसार न्याय समाज की अनिवार्य शर्त है।
जॉन रॉल्स समकालीन उदारवाद की समतावादी
→ विचारधारा का प्रतिनिधित्व करता है
रॉल्स के अनुसार न्याय की समस्या का मुख्य
→ सरोकार प्राथमिक वस्तुएं न्यायपूर्ण वितरण में है
प्राथमिक वस्तुएं निम्न हैं।
अधिकार स्वतंत्रताएं
1. शक्ति एवं अवसर
2. आत्मसम्मान के साधन
3. रॉल्स ने अपनी तर्क प्रणाली में सामाजिक समझौता
→ सिद्धांत की काल्पनिक अवस्था का वर्णन किया है
रॉल्स अज्ञान के पर्दे की स्थिति का वर्णन मूल
→ स्थिति के संदर्भ में करता है। रॉल्स के अनुसार
मूल स्थिति मनुष्य एक विवेकशील कर्ता है जो
न्याय के नियमों का पता लगाने के लिए एकत्रित
हुए थे है
रॉल्स के अनुसार सामान्य अर्थशास्त्र, मनोवैज्ञानिक
→ एवं न्याय का बोध होता है। और न्याय प्राप्ति के
लिए वे अज्ञान के पर्दे को हटाने की बात है।
रॉल्स ने न्याय सिद्धान्त के तीन तर्क दिये

रॉल्स

- समान स्वतंत्रता का सिद्धान्त
- भेदमूलक सिद्धांत
- समुदायवादी सिद्धान्त

1 समान स्वतंत्रता का सिद्धान्त ⇒ समाज में प्रत्येक

को सम्मान स्वतंत्रता मिलनी चाहिए धर्म, जाति
लिंग के आधार पर कोई भेदभाव नहीं होना
चाहिए

2. भेदमूलक सिद्धान्त ⇒ सामाजिक और आर्थिक विषमताएं
इस ढंग से व्यवस्थित की जाये।
(1) हिनतम स्थिति वाले लोगों को अधिकतम लाभ हो।
(2) यह विशेषता विषमताएं उन पदों पदो स्थितियों से जुड़ी
है जो अवसर की उचित समानता की शर्तों पर सब
के लिए समान रूप से प्राप्त है। इस प्रकार के सिद्धांत को
अवसर की उचित समानता का सिद्धान्त कहा जाता है।
→ रॉल्स के अनुसार इन सिद्धान्तों को एक विशेष क्रम
में रखा गया है सिद्धांत एक को दो से ज्यादा
प्राथमिकता दी गई है। इसी प्रकार के सिद्धान्त के दो
में उप सिद्धांत दो को एक से ज्यादा प्राथमिकता दी
जायेगी।
रॉल्स की प्रमुख आलोचना इस आधार पर
की जाती है कि उसमें कुछ शर्तों के साथ पूंजीवादी
व्यवस्था को कायम रखने का न्याय संघर्ष आधार
बताया है
→ रॉल्स के सिद्धान्त का सार यह है कि हिनतम स्थिति
वाले लोगों को अधिकतम लाभ मिलना चाहिए।
समकालीन उदारवाद में स्वेच्छातंत्रवादी विचारक
रॉबर्ट नॉजिक ने दो प्रकार के सिद्धांतों में अंतर किया
1. ऐतिहासिक सिद्धान्त
2. साध्यमूलक सिद्धान्त (उपयोगितावाद से समर्थित)
→ नॉजिक ने ऐतिहासिक सिद्धांत का समर्थन किया है

नोजिक अपने सिद्धान्त को अधिकारिता सिद्धान्त के रूप में प्रस्तुत करता है अर्थात् समाज में उत्पादन के स्तर पर जो असमानताएं पायी जाती हैं उन्हें वितरण के स्तर पर बदलने का प्रयास अनुचित है

→ नोजिक के अनुसार राज्य के व्यापक कल्याणकारी कार्य अवैध हैं। नोजिक के अनुसार यदि किसी मरुस्थल में पानी का एक ही स्रोत हो तो किसी व्यक्ति को उस पर अपना स्वामित्व करने की स्वतंत्रता नहीं दी जा सकती परन्तु यदि किसी व्यक्ति ने किसी प्राण घातक रोग का उपचार ढूंढ लिया हो तो उसे उसकी मनचाही कीमत वसूल लेने का अधिकार है

→ नोजिक की तरह एक अन्य स्वेच्छातंत्रवादी विचारक एफ. ए. हेयक ने एक क्रियात्मक न्याय का समर्थन किया

→ **समुदायिक विचारधारा ⇒**

समुदायिक विचारधारा न्याय का समुदाय दृष्टिकोण सामाजिक वस्तुओं के ऐसे वितरण का समर्थन करता है जिनमें सब समान सुविधाएं मिल सकें। वह यह मानता है कि समुदाय का हित उसकी ऐतिहासिक और सामाजिक पहचान की अभिव्यक्ति है। अतः सार्वजनिक संसाधनों को सामाजिक मूल्य के अनुरूप बनाने और समाज के साथ व्यक्ति के सम्बन्ध को सुदृढ़ करने के लिए उपयुक्त परिवर्तन की मांग करता है।

→ इस विचारधारा के प्रमुख समर्थक मार्गेल वाल्जर हैं। वाल्जर ने अपनी पुस्तक न्याय के आयाम में यह स्पष्ट किया है कि न्याय का कोई सार्वभौमिक नियम नहीं हो सकता है वाल्जर ने सरल और जटिल समानता की धारणा प्रस्तुत करते हुए यह तर्क दिया है कि समकालीन समाज में न्याय की स्थापना के लिए जटिल समानता की स्थापना करनी होगी। जटिल समानता का अर्थ है विभिन्न सामाजिक वस्तुएं सामाजिक जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में वितरण के लिए बनी हैं

न्याय का नारीवादी दृष्टिकोण ⇒

का मुख्य सरोकार इस बात से है कि विकास की प्रक्रिया में महिलाओं को पुरुषों जितना ही लाभ हो या नहीं अर्थात् महिलाओं को सभी लाभों के बंटवारे में समान भागीदार बनाया जाना चाहिए। न्याय के नारीवाद दृष्टिकोण के प्रमुख समर्थक - फ्रीमैन नारीवादी का अन्य स्वरूप पर्यावरण नारीवाद। नारी पर्यावरण संरक्षण में ज्यादा भूमिका निभा सकती है। क्योंकि वह संवेदनशील होती है अतः पर्यावरण की रक्षा के लिए स्त्रियों की दशा में सुधार कर उन्हें आगे लाना चाहिए ताकि पर्यावरण को बचाया जा सके।

7

स्वतन्त्रतावाद
[LIBERTARIANISM]

"जहाँ कानून नहीं, वहाँ स्वतन्त्रता नहीं।"[1] —जॉन लॉक

परिचय (Introduction)– स्वतन्त्रता मनुष्य की सबसे प्रिय वस्तु है। प्रत्येक मनुष्य स्वतन्त्रता चाहता है। यही कारण है कि राजनीति विज्ञान में स्वतन्त्रता का तथा अधिकारों की व्यवस्था में स्वतन्त्रता का बहुत अधिक महत्व है। जिस प्रकार अधिकार व्यक्ति के व्यक्तित्व के विकास के लिए आवश्यक हैं। उसी प्रकार स्वतन्त्रता भी व्यक्ति के व्यक्तित्व के विकास के लिए आवश्यक है क्योंकि अधिकारों का उपयोग स्वतन्त्रता के वातावरण में ही सम्भव है।

स्वतन्त्रतावाद शब्द स्वतन्त्रता से ही बना है। इसलिए स्वतन्त्रतावाद को समझने के लिए पहले स्वतन्त्रता को समझना अनिवार्य है।

स्वतन्त्रता की परिभाषा (Definition of Liberty)

स्वतन्त्रता शब्द का प्रयोग विभिन्न अर्थों में किया जाता है इसलिए इसका सुनिश्चित और सर्वमान्य अर्थ बताना कठिन है। मॉन्टेस्क्यू ने लिखा है कि, "ऐसा कोई दूसरा शब्द नहीं है जिसके इतने विभिन्न भावार्थ लिए जा सकते हैं और जिसने मानव-मस्तिष्क पर इतना विभिन्न प्रभाव डाला हो।"

स्वतन्त्रता शब्द अंग्रेजी भाषा के Liberty शब्द का हिन्दी रूपान्तर है। 'लिबर्टी' शब्द लैटिन भाषा के Liber (लिबर) शब्द से निकला है, जिसका अर्थ होता है—बन्धनों का न होना। इस प्रकार शब्द की व्युत्पत्ति के आधार पर स्वतन्त्रता का अर्थ है—बन्धनों का न होना (Absence of Restraints)। अर्थात् मनुष्य की इच्छा और कार्य पर किसी प्रकार की रुकावट व मर्यादा न हो। परन्तु यह स्वतन्त्रता का गलत अर्थ है। बार्कर के शब्दों में, "जिस प्रकार बदसूरती का न होना सुन्दरता नहीं है, उसी प्रकार बन्धनों का न होना स्वतन्त्रता नहीं है।" इसलिए स्वतन्त्रता का अर्थ मनुष्य को जंगली पशुओं की भाँति अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिए शक्ति के द्वारा मनमानी करने का अधिकार नहीं बल्कि मनुष्य अपने अधिकारों का इस तरह उपयोग करे कि सामाजिक नियम, राज्य के कानून और दूसरों के अधिकार बने रहें। लास्की के शब्दों में, "स्वतन्त्रता का अर्थ उस वातावरण की स्थापना से है जिसमें मनुष्य को अपने पूर्ण

---

1 "Where there is no law, there is no freedom." —Locke

Scanned with CamScanner

विकास के लिए अवसर प्राप्त होते हैं।" स्वतन्त्रता की परिभाषा के सम्बन्ध में अनेक विद्वानों ने अपने विचार व्यक्त किए हैं—

हॉब्स के शब्दों में, "स्वतन्त्रता का अर्थ है—बन्धनों का अभाव।"[1]

1789 के मानव अधिकार घोषणा-पत्र के अनुसार, "स्वतन्त्रता वह शक्ति है जिसके आधार पर मनुष्य कोई भी ऐसा कार्य कर सकता है जो दूसरों को हानि न पहुँचाए।"

हर्बर्ट स्पेन्सर के शब्दों में, "प्रत्येक मनुष्य वह करने को स्वतन्त्र है जिसकी वह इच्छा करता है, यदि वह किसी अन्य मनुष्य की समान स्वतन्त्रता का हनन नहीं करता हो।"

प्रो. लॉस्की के अनुसार, "स्वतन्त्रता का तात्पर्य है उन सामाजिक अवस्थाओं के ऊपर नियन्त्रण का अभाव जो आधुनिक सभ्यता में व्यक्ति के सुख के लिए अत्यावश्यक है।"

मैकेंजी के शब्दों में, "स्वतन्त्रता सब प्रकार के प्रतिबन्धों के अभाव को नहीं कहते, अपितु अनुचित प्रतिबन्धों के स्थान पर उचित प्रतिबन्धों की व्यवस्था है।"[2]

टी. एच. ग्रीन के अनुसार, "स्वतन्त्रता उन कार्यों को करने अथवा उन वस्तुओं के उपयोग करने की शक्ति है जो करने तथा उपभोग करने योग्य हैं।"[3]

पेन के विचारानुसार, "स्वतन्त्रता उन बातों को करने का अधिकार है जो दूसरों के विरुद्ध नहीं है।"

रैम्जेम्योर के शब्दों में, "स्वतन्त्रता का अर्थ है व्यक्तियों और मनुष्यों द्वारा अपने विचारों के अनुसार सोचने, उसे प्रकट करने तथा उसके अनुसार कार्य करने की शक्ति का सुरक्षित उपभोग, उन्हें कानून की रक्षा के अन्दर अपनी प्राकृतिक शक्तियों को अपनी इच्छा के अनुसार प्रयोग करने का अधिकार प्राप्त हो, बशर्ते वे दूसरों के समान अधिकारों का हनन नहीं करते हों।"

सीले के अनुसार, "स्वतन्त्रता अतिशासन की विरोधी है।"[4]

जी. डी. एच. कोल के अनुसार, "बिना किसी बाधा के अपने व्यक्तित्व को प्रकट करने के अधिकार का नाम स्वतन्त्रता है।"[5]

सी. डी. बर्न्स के शब्दों में, "स्वतन्त्रता अपने व्यक्तित्व और योग्यताओं का पूरा विकास है।"[6]

महात्मा गाँधी के अनुसार, "स्वतन्त्रता का अर्थ नियन्त्रण का अभाव नहीं वरन् व्यक्तित्व के विकास की अवस्थाओं की प्राप्ति है।"

---

1 "Liberty means the absence of restraints." —*Hobbes*

2 "Freedom is not the absence of all restraints, but rather the substitution of rational ones for the irrational." —*Mackenzie*

3 "Freedom is the positive capacity of doing or enjoying something worth doing or enjoying and that, too, something we do or enjoy with others." —*T. H. Green*

4 "Liberty is the opposite of over government." —*Seeley*

5 "Liberty is the freedom of the individual to express without external hindrance to personality." —*G. D. H. Cole*

6 "Liberty means liberty to grow to one's natural height, to develop one's abilities." —*C. D. Burns*

स्वतन्त्रता के तत्त्व—स्वतन्त्रता की परिभाषाओं के आधार पर इसके तत्त्व निम्न प्रकार देखे जा सकते हैं—

1. सामाजिक ढाँचे को संगठित रखते हुए व्यक्ति को अधिक से अधिक स्वतन्त्रता प्राप्त हो।

2. सभी व्यक्तियों के लिए स्वतन्त्रता समान हो।

3. प्रत्येक व्यक्ति को अपनी भौतिक, मानसिक तथा नैतिक उन्नति का पूर्ण अवसर प्राप्त हो।

4. स्वतन्त्रता को सार्थक बनाने के लिए कर्तव्यों का पालन तथा राज्य एवं समाज के नियम, बन्धन, परम्पराओं के बन्धनों का पालन हो। इसलिए कहा जा सकता है कि, "स्वतन्त्रता के उपभोग के लिए नियन्त्रण अनिवार्य है।" रोडी, एण्डरसन और क्रिस्टॉल के अनुसार, "चूँकि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, स्वतन्त्रता का अर्थ बन्धनहीनता नहीं हो सकता। स्वतन्त्रता का अर्थ निजी तथा सामूहिक उत्तरदायित्व है।"

डॉ. आशीर्वादम् के शब्दों में, "आत्म-विकास के लिए वास्तविक अवसर का ही नाम स्वतन्त्रता है।"

स्वतन्त्रता के नकारात्मक और सकारात्मक पक्ष

(1) **नकारात्मक स्वतन्त्रता** (Negative Liberty) – उदारवाद के आरम्भिक विचारक स्वतन्त्रता को नकारात्मक मानते थे। वे इसे बन्धनों के अभाव (Absence of Restraints) के रूप में देखते थे। लॉक, एडम स्मिथ, पेन, स्पेन्सर आदि उदारवादी विचारक स्वतन्त्रता के इसी रूप के समर्थक हैं। उनका अभिप्राय स्पष्ट है। मनुष्य अपनी इच्छा व्यक्त करने में तथा अपने कार्य करने में पूर्ण स्वतन्त्र होना चाहिए। मनुष्य की अपनी इच्छा और उसके कार्यों पर किसी प्रकार का प्रतिबन्ध नहीं होना चाहिए। उसे अपने अन्तःकरण (Conscience or Inner Voice) के अनुसार कार्य करने की पूरी स्वतन्त्रता होनी चाहिए यानी व्यक्ति राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक, सामाजिक, बौद्धिक आदि प्रत्येक क्षेत्र में स्वतन्त्र होगा। वो केवल स्व-विवेक के अनुसार कार्य करेगा। उसके कार्य का आधार राज्य का कानून नहीं, बल्कि प्राकृतिक कानून (Natural Law) होगा।

इनके दर्शन का केन्द्र व्यक्ति है जिसके जीवन, स्वतन्त्रता तथा सम्पत्ति के अधिकारों की रक्षा करना राज्य का कर्तव्य है। प्रो. वॉन ने कहा भी है कि लॉक के राज्य दर्शन में प्रत्येक वस्तु व्यक्ति के इर्द-गिर्द घूमती है। प्रत्येक नियम का उद्देश्य केवल व्यक्ति सर्वोच्चता की रक्षा करना है। एडम स्मिथ और रिकार्डो आर्थिक क्षेत्र में खुला छोड़ दो (Lassaiz faire) के सिद्धान्त का समर्थन करते हैं। भूमि, श्रम और पूँजी पर निजी स्वामित्व (Private ownership) चाहते हैं और राज्य द्वारा आर्थिक क्रियाओं के परिचालन में प्रत्येक प्रकार के हस्तक्षेप का विरोध करते हैं। स्पेन्सर स्वतन्त्रता के सिद्धान्त का सबसे प्रबल समर्थक है। वह राज्य को स्वतन्त्रता का विरोधी मानता है। उसका राज्य पुलिस राज्य है, जिसके तीन कार्य हैं—बाहरी आक्रमणों से सुरक्षा, आन्तरिक व्यवस्था बनाए रखना और न्याय। इसके अतिरिक्त राज्य जो कार्य करेगा, उसमें व्यक्ति की स्वतन्त्रता का हनन होना आवश्यक है। उसने सम्पत्ति, धर्म और पारिवारिक स्वतन्त्रता को मनुष्य का निजी अधिकार माना है जिन पर किसी प्रकार का प्रतिबन्ध नहीं लगाया जा सकता है। जॉन स्टुअर्ट मिल व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का महान् पोषक

Scanned with CamScanner

था। उसके अनुसार, "प्रत्येक व्यक्ति अपने कार्यों के सम्बन्ध में किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं चाहता है यहाँ तक कि मदिरापान और जुआ खेलने जैसे व्यसनों पर भी दबाव का विरोध करता है। उसका विश्वास है कि व्यक्तित्व का विकास केवल स्वतन्त्रता के वातावरण में ही हो सकता है और स्वतन्त्रता बन्धनों के अभाव में ही सम्भव है। इसका परिणाम यह होगा कि एक शक्तिशाली या क्षमतावान व्यक्ति अपनी शक्ति एवं सामर्थ्य का प्रयोग करके किसी अन्य व्यक्ति को उसकी इच्छा के विरुद्ध अथवा अपनी इच्छा के अनुसार कार्य करने के लिए विवश करेगा। परिणामतः सर्वत्र शक्ति एवं बल प्रयोग का नंगा नाच होने लगेगा और सर्वत्र अराजकता फैल जाएगी तथा स्वतन्त्रता नाम की कोई वस्तु नहीं रह जाएगी। इसीलिए नकारात्मक स्वतन्त्रता के पक्षधर यह कहते हैं कि हमारा तात्पर्य केवल उस क्षेत्र से है जिसमें व्यक्ति दूसरे से बाधारहित होकर कार्य कर सके। चूँकि मनुष्य समाज में रहता है, अतः वह आशा नहीं कर सकता कि समाज या अन्य व्यक्ति उसके सभी कार्यों से अछूते या अप्रभावित बने रहेंगे और उसके कार्यों में किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं करेंगे।

समाज और व्यक्ति परस्पर घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध हैं। व्यक्ति जो कुछ सोचता है अथवा करता है, उसका प्रभाव अन्ततः समाज पर पड़ता है। इसलिए यह आवश्यक हो जाता है कि व्यक्ति समाज के नियमों एवं बन्धनों के अन्तर्गत यानि इनका पालन करते हुए अपनी स्वतन्त्रता का उपयोग करे।

स्वतन्त्रता केवल बन्धनों का अभाव नहीं है बल्कि उन दशाओं की प्राप्ति भी है जो मनुष्य के विकास के लिए आवश्यक हैं। इसी दृष्टि से यह कहा जाता है कि नकारात्मक स्वतन्त्रता का सिद्धान्त अधूरा और एकांगी है।

(2) **सकारात्मक स्वतन्त्रता** (Positive Liberty)—18वीं सदी और उसके बाद के उदारवादियों ने स्वतन्त्रता की सकारात्मक धारणा का विकास किया। बेंथम और मिल जैसे उपयोगितावादी और काण्ट, फिक्टे तथा ग्रीन जैसे आदर्शवादी विचारकों का कहना है कि स्वतन्त्रता मात्र प्रतिबन्धों का अभाव नहीं है बल्कि उन अवसरों की उपस्थिति का नाम है जिनके बिना व्यक्ति का शारीरिक और बौद्धिक विकास नहीं हो सकता। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, वह समाज में रहता है। इसलिए उसको समाज के हित में अपना हित देखना चाहिए। समाज के हित के लिए सामाजिक नियमों तथा आचरणों द्वारा नियन्त्रित रहकर व्यक्ति के पूर्ण विकास के अवसरों की प्राप्ति ही स्वतन्त्रता है।

लॉस्की ने कहा है कि, "स्वतन्त्रता एक सकारात्मक चीज है, यह केवल बन्धनों का अभाव ही नहीं है। उसको वस्तुतः ऐसी परिस्थितियाँ चाहिए जिनमें वह अपने व्यक्तित्व का विकास स्वतन्त्रतापूर्वक कर सके।" मनुष्य समाज में रहता है अतएव समाज का हित उसका हित है। समाज के हित के लिए समाज द्वारा निर्मित नियमों का पालन करना आवश्यक है। अतः यह कहना सर्वथा उपयुक्त है कि सामाजिक नियमों तथा आचरणों द्वारा नियन्त्रित रहकर व्यक्ति के पूर्ण विकास के अवसर की प्राप्ति ही स्वतन्त्रता है और यही सकारात्मक स्वतन्त्रता है।

राज्य के कानून व्यक्ति की स्वतन्त्रता का विनाश ही नहीं करते हैं, अपितु न्यायोचित कानून स्वतन्त्रता के उपभोग के अधिक अवसर प्रदान करते हैं और इस प्रकार वे व्यक्ति की स्वतन्त्रता में वृद्धि करते हैं, अतः सकारात्मक स्वतन्त्रता के प्रतिपादक व्यक्ति और राज्य में

विरोध नहीं पाते हैं। लॉस्की का तो यहाँ तक कहना है कि, "स्वतन्त्रता का भाग्य कानून के साथ बँधा हुआ है। इससे अधिक पक्का विश्वास अन्य किसी दूसरी चीज में नहीं है।" सामान्य नियमों द्वारा मनुष्यों के आचरण और कार्य का नियमन आवश्यक है। आवश्यकता इस बात की है कि नियमों का निर्माण सामान्य जन के हित और जीवन की सही पद्धति (Right living) को ध्यान में रखकर किया जाए। आचरण को नियन्त्रित करके नियमित करना स्वतन्त्रता में बाधा डालना नहीं कहा जा सकता। उदाहरणार्थ—यदि कॉलेज में यह नियम बनाया गया है कि जिस विषय की कक्षा है उससे सम्बन्धित शिक्षार्थी ही सम्बन्धित कक्ष में बैठें, अन्य नहीं। इसे स्वतन्त्रता में बाधक नहीं कहा जा सकता क्योंकि यदि इस प्रकार का प्रतिबन्ध न लगाया जायेगा तो विषय से जिनका सम्बन्ध नहीं है वे भी उस कक्ष में बैठ जायेंगे और विषय के छात्र-छात्राओं को कक्ष में बैठने का स्थान नहीं मिलेगा। इसी प्रकार सामाजिक हित की दृष्टि से बनाए गए नियम अन्ततः व्यक्ति की स्वतन्त्रता कम न करके उसके हितों की वृद्धि करते हैं।

स्वतन्त्रता के भेद (Kinds of Liberty)

स्वतन्त्रता शब्द का विभिन्न अर्थों में प्रयोग किया जाता है। इसके भेद भी अनेक हैं—

(1) **प्राकृतिक स्वतन्त्रता** (Natural Liberty)—प्राकृतिक स्वतन्त्रता का अर्थ है कि मनुष्य प्रकृति से स्वतन्त्र है। प्राकृतिक स्वतन्त्रता के समर्थक लॉक, रूसो का विचार है कि स्वतन्त्रता मनुष्य का स्वाभाविक गुण है। व्यक्ति राज्य के जन्म से पूर्व भी प्राकृतिक स्वतन्त्रता का उपयोग करते थे। स्वतन्त्रता राज्य की देन नहीं है। इसका अर्थ है वे अधिकार जिनका अस्तित्व राज्य शक्ति से स्वतन्त्र तथा पूर्व है। रूसो के शब्दों में, "मनुष्य जन्म से स्वतन्त्र पैदा होता है, परन्तु बाद में वह सर्वत्र बन्धनों में जकड़ा हुआ पाया जाता है।"[1] इसके समर्थक यह मानते हैं कि राज्य को स्वतन्त्रता को सीमित करने का अधिकार नहीं है। स्पेन्सर के अनुसार, "व्यक्ति का विकास प्राकृतिक ढंग से उसी तरह स्वच्छन्दतापूर्वक होना चाहिए जिस तरह मानव के अतिरिक्त किसी अन्य स्वतन्त्र जीव का होता है।" प्राकृतिक स्वतन्त्रता का आशय मनुष्यों की अपनी इच्छानुसार कार्य करने की स्वतन्त्रता से है। सामाजिक समझौता सिद्धान्त के इसी विचार को संयुक्त राज्य अमरीका की 'स्वाधीनता घोषणा' और 'फ्रांस की राज्य क्रान्ति' में प्रधानता दी गई थी।

यह सिद्धान्त भ्रममूलक है। सामाजिक समझौतावादियों द्वारा वर्णित प्राकृतिक अवस्था (State of nature) काल्पनिक है। अतः प्राकृतिक स्वतन्त्रता का विचार भी काल्पनिक है। स्वतन्त्रता समाज की उपज है और राज्य में ही प्रयोग हो सकती है। यदि इसे लागू कर दिया जाए तो समाज में मत्स्य न्याय या जंगल का कानून लागू हो जायेगा, जिसमें बलशाली, निर्बल को समाप्त कर देता है। समाज में प्राकृतिक स्वतन्त्रता असम्भव है।

फिर भी इस सिद्धान्त का महत्त्व है। यह सिद्धान्त इस बात पर प्रकाश डालता है कि प्रत्येक व्यक्ति की कुछ स्वाभाविक शक्तियाँ होती हैं तथा व्यक्ति के व्यक्तित्व के विकास के लिए इनको उभारना आवश्यक है। राज्य का कर्तव्य है कि वह व्यक्तियों के लिए विकास की सुविधाएँ प्रदान करे।

1 "Man is born free, but every where he is in chains." —Rousseau

(2) **नागरिक स्वतन्त्रता** (Civil Liberty)—नागरिक स्वतन्त्रता का तात्पर्य व्यक्ति की उन स्वतन्त्रताओं से है जो व्यक्ति समाज या राज्य का सदस्य होने के नाते प्राप्त करता है। प्रो. **गैटिल** के अनुसार, "नागरिक स्वतन्त्रता उन अधिकारों और विशेषाधिकारों को कहते हैं, जिन्हें राज्य अपने नागरिकों के लिए पैदा करता है और जिनकी रक्षा करता है।" इस प्रकार कानून द्वारा प्रदत्त तथा राज्य की शक्ति द्वारा संरक्षित अधिकार नागरिक स्वतन्त्रता कहलाते हैं। इसके दो पहलू—(i) सकारात्मक (Positive)—व्यक्ति को इच्छानुसार कार्य करने की स्वतन्त्रता है और सरकार उसकी स्वतन्त्रता का अपहरण नहीं कर सकती, (ii) नकारात्मक (Negative)—किसी व्यक्ति की स्वतन्त्रता के उपभोग में दूसरा व्यक्ति हस्तक्षेप न करे। प्रो. गैटिल के शब्दों में, "नागरिक स्वतन्त्रता को कार्य करने की स्वतन्त्रता एवं हस्तक्षेप से उन्मुक्ति दोनों ही सम्मिलित है।" नागरिक स्वतन्त्रता कानून की देन है और उत्तरदायी शासन में ही इसका उपभोग सम्भव हो सकता है। प्रो. **लास्की** के अनुसार, "स्वतन्त्रता तब तक वास्तविक नहीं हो सकती जब तक सरकार को उत्तरदायी नहीं ठहराया जाए और वह अधिकारों का अतिक्रमण करती है उस समय अवश्य ही उससे जवाब तलब करना चाहिए।" नागरिक स्वतन्त्रता के कई प्रकार हैं—व्यक्तिगत जीवन की स्वतन्त्रता, सम्पत्ति की स्वतन्त्रता, व्यक्तिगत स्वतन्त्रता, भाषण, लेखन, अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता, कानून के समक्ष समानता, आर्थिक स्वतन्त्रता आदि।

(3) **राजनीतिक स्वतन्त्रता** (Political Liberty)—राजनीतिक स्वतन्त्रता का तात्पर्य है कि मनुष्य राज्य के शासन संचालन में सक्रिय रूप से भाग लेने का अधिकार रखते हों। **लास्की** ने परिभाषा देते हुए कहा है कि, "राज्य के कार्यों में सक्रिय भाग लेने की शक्ति ही राजनीतिक स्वतन्त्रता है।" **लीकॉक** के अनुसार, "राजनीतिक स्वतन्त्रता संवैधानिक स्वतन्त्रता है और इसका अर्थ है कि लोगों को अपनी सरकार चुनने का अधिकार होना चाहिए।" **क्रिस्टोफर लॉयड** के शब्दों में, "राजनीतिक स्वतन्त्रता नागरिक और धार्मिक स्वतन्त्रता से बढ़कर नहीं है।" **गिलक्राइस्ट** ने राजनीतिक स्वतन्त्रता को 'व्यावहारिक रूप से जनतन्त्र का पर्यायवाची' (Practically synonymous with democracy) कहा है। इस प्रकार की स्वतन्त्रता केवल जनतन्त्र में ही सम्भव है। राजनीतिक स्वतन्त्रता के अनेक प्रकार हैं, मतदान, योग्यतानुसार सरकारी पद प्राप्ति, शासन व्यवस्था की रचनात्मक आलोचना करना आदि। राजनीतिक स्वतन्त्रता के लिए यह आवश्यक है कि जनता शिक्षित हो और आम जनता को सच्ची तथा सीधी सूचनाएँ मिलती रहें, समाचार पत्रों पर अनावश्यक प्रतिबन्ध न हो।

(4) **आर्थिक स्वतन्त्रता** (Economic Liberty)—आर्थिक स्वतन्त्रता के अभाव में राजनीतिक स्वतन्त्रता व्यर्थ है। आर्थिक स्वतन्त्रता का अर्थ बताते हुए **लास्की** ने कहा है कि, "आर्थिक स्वतन्त्रता का अर्थ है प्रत्येक प्राणी को अपनी जीविका कमाने के लिए समुचित सुरक्षा प्राप्त हो।" मि. टॉनी के अनुसार, "आर्थिक स्वतन्त्रता का अर्थ उन आर्थिक असफलताओं का अभाव है जो आर्थिक शोषण का कारण बनती है।" **कोल** के अनुसार, "आर्थिक स्वतन्त्रता के अभाव में राजनीतिक स्वतन्त्रता की बात करना एक क्रूर मजाक है।" आर्थिक स्वतन्त्रता से तात्पर्य यह है कि मनुष्य जो कुछ भी अर्जित करे उस पर उसी व्यक्ति का पूर्ण अधिकार हो। व्यक्तियों को भूख एवं बेरोजगारी की चिन्ता से मुक्ति हो। व्यक्ति के श्रम का दूसरे व्यक्ति के द्वारा शोषण न हो सके। आर्थिक स्वतन्त्रता के अभाव में व्यक्ति अपने मौलिक अधिकार, राजनीतिक स्वतन्त्रता सभी का लाभ नहीं उठा पाता है। जहाँ दाने-दाने को व्यक्ति तरसता हो, परिश्रम के बाद भी पेट भरने की गारण्टी न हो, वहाँ अन्य स्वतन्त्रताएँ बेकार

हैं। आर्थिक स्वतन्त्रता से तात्पर्य है कि योग्यतानुसार जीविकोपार्जन की सुरक्षा तथा अवसर की प्राप्ति सभी के लिए समाज में किसी का शोषण न हो सके और व्यक्ति की भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति हो सके। कुछ व्यक्ति आर्थिक स्वतन्त्रता का अर्थ 'उद्योग में प्रजातन्त्र' की स्थापना से लगाते हैं जिसका तात्पर्य है कि एक श्रमिक केवल अपने श्रम को बेचने वाला ही नहीं, वरन् वह उत्पादन व्यवस्था का निर्णायक भी हो। आर्थिक स्वतन्त्रता में ही राजनीतिक स्वतन्त्रता सार्थक हो सकती है।

(5) **नैतिक स्वतन्त्रता** (Moral Liberty)—व्यक्ति सही अर्थ में तभी स्वतन्त्र हो सकता है जबकि उसे नैतिक स्वतन्त्रता प्राप्त हो। अपने समान सभी जीवों को मानना ही नैतिक स्वतन्त्रता है। प्रो. **आशीर्वादम्** ने आगे लिखा है कि, "निःस्वार्थ भाव से मानवता का कल्याण तथा सेवा करने में ही नैतिक स्वतन्त्रता निहित है।"

(6) **धार्मिक स्वतन्त्रता** (Religious Liberty)—मनुष्य के नैतिक तथा सामाजिक जीवन के निर्माण में धर्म का महत्वपूर्ण स्थान है। प्रत्येक व्यक्ति को अपनी इच्छानुसार किसी धर्म को अपनाने, पालन करने, पूजा-पाठ, उपासना आदि करने की स्वतन्त्रता होनी चाहिए। राज्य के द्वारा किसी धर्म के प्रति पक्षपात नहीं करना चाहिए। सभी धर्म राज्य की दृष्टि में समान हों। राज्य का अपना कोई धर्म नहीं होना चाहिए। धर्म व्यक्तिगत विचार है। व्यक्ति उसे माने या न माने। साधारणतया राज्य को धर्म पर प्रतिबन्ध नहीं लगाना चाहिए परन्तु यदि धर्म के आधार पर धर्मावलम्बी समाज में अनैतिकता और समाज को दूषित करने का कार्य करें तो राज्य को धर्म पर प्रतिबन्ध लगाकर उसे नियन्त्रित करना चाहिए।

(7) **राष्ट्रीय स्वतन्त्रता** (National Liberty)—इसका तात्पर्य स्वराज्य या जनता का विदेशी आधिपत्य से मुक्त रहने का अधिकार है। भाषा, धर्म, संस्कृति, नस्ल, परम्परा, पेशा, क्षेत्र, समान कष्ट आदि के आधार पर जब लोगों में एकता की भावना आती है तब वह राष्ट्रीयता कहलाती है। राष्ट्रीय स्वतन्त्रता का तात्पर्य देश के शासन, विदेश नीति, सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक उत्थान पर देशवासियों का ही अधिकार हो, अर्थात् एक राष्ट्र एक राज्य का सिद्धान्त पाया जाए। राष्ट्र पूर्ण स्वतन्त्र हो।

(8) **निजी स्वतन्त्रता** (Personal Liberty)—इसका तात्पर्य यह है कि राज्य को व्यक्ति के निजी मामलों में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। प्रत्येक व्यक्ति अपना पहनावा, भोजन, रहन-सहन, शादी, बच्चों की शिक्षा और काम अपनी इच्छानुसार कर सके। व्यक्ति के दैनिक जीवन में किसी अन्य व्यक्ति का हस्तक्षेप नहीं होना चाहिए, परन्तु राज्य को यह अधिकार हो कि वह सामाजिक कुरीतियों को रोककर सुधार कर सके। जे. एस. मिल के शब्दों में, "मानव समाज को केवल आत्म-रक्षा के उद्देश्य से ही, किसी व्यक्ति की स्वतन्त्रता में व्यक्तिगत या सामूहिक रूप से हस्तक्षेप करने का अधिकार हो सकता है। अपने ऊपर, अपने शरीर, मस्तिष्क और आत्मा पर व्यक्ति स्वतन्त्र है।"

(9) **सामाजिक स्वतन्त्रता** (Social Liberty)—इसका तात्पर्य है कि समाज के प्रत्येक व्यक्ति को समाज में बिना किसी भेदभाव के समान स्तर प्राप्त हो, समाज के प्रत्येक व्यक्ति को अपने व्यक्तित्व को विकसित करने के उचित अवसर प्राप्त हों। अर्थात् सामाजिक समानता पाई जाए। जाति, धर्म, भाषा, रंग, नस्ल, सम्प्रदाय आदि के आधार पर कोई भेदभाव न रहे।

Scanned with CamScanner

स्वतन्त्रता के संरक्षण (Safeguards of Liberty)

स्वतन्त्रता की सुरक्षा के लिए कुछ विशेष संरक्षण आवश्यक हैं जिनमें कुछ निम्नांकित हैं—

(1) **नागरिकों की जागरूकता**—"सतत् जागरूकता स्वतन्त्रता का मूल्य है।" नागरिकों को अपने अधिकारों और कर्तव्यों के प्रति जागरूक रहना चाहिए उन्हें अधिकारों की प्राप्ति के लिए संघर्ष करने, कर्तव्य पूरा करने के लिए सदैव तत्पर रहना चाहिए। **लास्की** के शब्दों में, "अराजकता का भय शासन सत्ता के दुरुपयोग के विरुद्ध एक रक्षा कवच है।" **लास्की** ने एक अन्य स्थान पर लिखा है कि, "नागरिकों की महान् भावना, न कि कानून की शब्दावली स्वतन्त्रता की वास्तविक सुरक्षा है।" **डी.वी. मैकलाइन** ने भी कहा है कि, "कोई भी देश तब तक अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा नहीं कर सकता जब तक कि समय-समय पर वहाँ की जनता अपनी विरोध भावना का प्रदर्शन करके अपने शासकों को सजग न करती रहे।" इसलिए यह मान ही है कि, "सतत् जागरूकता स्वतन्त्रता का मूल्य है।"

(2) **वैधानिक प्रभु और राजनीतिक प्रभु में सहयोग**—वैध प्रभु सरकार और राजनीतिक प्रभु जनता में सहयोग आवश्यक है। वैध प्रभु को राजनीतिक प्रभु की इच्छानुसार कार्य करना चाहिए, तभी प्रजातन्त्र प्रणाली सफलता से चल सकती है।

(3) **नागरिक अधिकारों की सुव्यवस्था**—नागरिक अधिकारों की समुचित व्यवस्था भी स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए अनिवार्य है। संविधान में मौलिक अधिकारों का वर्णन इसीलिए किया जाता है। **लास्की** के शब्दों में, "स्वतन्त्रता तब तक वास्तविक नहीं हो सकती जब तक सरकार को उत्तरदायी न ठहराया जाए और जब वह अधिकारों का अतिक्रमण करती है, उस समय अवश्य ही उससे जवाब तलब किया जाए।"

(4) **कानून का औचित्य**—कानून स्वतन्त्रता का मित्र है। कानून और व्यवस्था ही स्वतन्त्रता के वास्तविक आधार हैं। लेकिन कानून आदर्श होना चाहिए। कानून निष्पक्ष और सभी पर समान रूप से लागू होने वाला होना चाहिए। **मॉन्टेस्क्यू** के शब्दों में, "कानून के स्वभाव तथा उसके द्वारा दण्ड की मात्रा पर ही मुख्यतया स्वतन्त्रता की रक्षा तथा उसका हनन निर्भर है।" इंग्लैण्ड में कानून का शासन इसी आधार पर है कि वहाँ कानून की निगाह में सभी समान हैं। **डायसी** के शब्दों में, "हमारे लिए प्रधानमन्त्री से लेकर एक सिपाही या कर वसूल करने वाले तक, प्रत्येक कर्मचारी का दायित्व प्रत्येक ऐसे कार्य के लिए जो कानून के अन्तर्गत न्याय न हो, उतना ही है जितना किसी साधारण नागरिक का होता है।"

(5) **विशेषाधिकारों का अन्त**—विशेषाधिकारों से समाज की स्वतन्त्रता समाप्त होती है। विशेषाधिकार से जनसाधारण में असन्तोष फैलता है। समाज के एक वर्ग को विशेषाधिकार प्रदान करने से सार्वजनिक स्वतन्त्रता की बात नहीं कही जा सकती है। विशेषाधिकार प्राप्त वर्ग अपने को सामान्य वर्ग से कुछ ऊँचा और अच्छा मानता है जिससे समाज में वास्तविक न्याय नहीं हो पाता है। **लास्की** के शब्दों में, "यदि समाज के किसी भाग को विशेष अधिकार दिए गए हों तो उस दशा में जनसाधारण स्वतन्त्रता का उपयोग नहीं कर सकता।"

(6) **शक्तियों का पृथक्करण**—राजनीतिक शक्तियों का विकेन्द्रीकरण स्वतन्त्रता के लिए आवश्यक है। शक्तियों के केन्द्रीकरण से शासन में तानाशाही, उत्तरदायित्वहीनता,

अकुशलता, देरी आदि प्रवृत्ति आती है तो विकेन्द्रीकरण से उत्तरदायित्व की भावना, कुशलता, शीघ्रता और जनता के प्रति कर्तव्य की भावना जगाती है। **लॉर्ड एक्टन** के शब्दों में, "सत्ता आदमी को भ्रष्ट करती है।" **मैडीसन** ने भी कहा है कि, "व्यवस्थापिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका सम्बन्धी सारी शक्तियों का एक ही हाथ में केन्द्रित होना अत्याचारी शासन की उपयुक्त परिभाषा कही जा सकती है।" इसलिए किसी देश की स्वतन्त्रताओं की रक्षा के लिए यह आवश्यक है कि सरकार की शक्तियों का उचित विभाजन हो। **मॉन्टेस्क्यू** का मत है कि, "इनमें से प्रत्येक अपने क्षेत्र में स्वतन्त्र हो तथा प्रत्येक अंग को अपने कार्य-क्षेत्र तक ही सीमित रहना चाहिए और उसके द्वारा दूसरे अंग के कार्य को प्रभावित करने या उस पर नियन्त्रण स्थापित करने की चेष्टा नहीं करनी चाहिए।"

(7) **निष्पक्ष और स्वतन्त्र न्यायपालिका**—स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए न्यायपालिका का स्वतन्त्र और निष्पक्ष होना अनिवार्य है। न्यायपालिका तभी स्वतन्त्र रह सकती है जबकि कार्यपालिका और व्यवस्थापिका आवश्यक रूप से न्यायपालिका के कार्यों में हस्तक्षेप न करें। न्यायाधीशों की सेवाएँ सुरक्षित रहें। न्याय सभी के लिए समान रूप से प्राप्त हो। **जे. एम. बेक** ने अमरीका के बारे में कहा है कि, "सर्वोच्च न्यायालय न्याय प्रदान करने की एक एजेन्सी ही नहीं अपितु एक अर्थ में निरन्तर कार्य करने वाली संविधान सभा है।" **ब्राइस** ने कहा है कि, "किसी शासन की श्रेष्ठता जाँचने के लिए उसकी न्याय व्यवस्था की निपुणता से बढ़कर अन्य कोई कसौटी श्रेष्ठ नहीं है।"

(8) **लोकतन्त्रीय शासन व्यवस्था**—स्वतन्त्रता का वास्तविक संरक्षण लोकतन्त्रीय शासन में निहित है, जिसमें शासन शक्ति जनता के हाथ में रहती है। नागरिक स्वतन्त्रता लोकतन्त्र में सम्भव है। समाज के विभिन्न वर्गों में सहयोग और अल्पसंख्यकों के हितों की रक्षा हो।

(9) **आर्थिक विषमता का अन्त**—आर्थिक विषमता भी स्वतन्त्रता के मार्ग में बाधा है। भूखी, नंगी तथा बेकार जनता से स्वतन्त्रता की अनुभूति नहीं मिल सकती। **मैथ्यू आर्नोल्ड** के शब्दों में, "आर्थिक विषमता उच्च वर्ग को धनलोलुप, मध्य वर्ग को अशिष्ट तथा निम्न वर्ग को पशु बना देती है।"[1]

लास्की के शब्दों में, "जहाँ कुछ लोग अमीर और गरीब, शिक्षित और अशिक्षित होते हैं, वहाँ हम सदैव स्वामी और दासों का सम्बन्ध पाते हैं।"[2]

(10) **शासन का विकेन्द्रीकरण**—स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए शासन शक्तियों का विकेन्द्रीकरण भी आवश्यक है। **लास्की** के अनुसार, "राज्य में सत्ता का जितना अधिक विस्तृत वितरण होगा, जितनी अधिक विकेन्द्रीकृत उसकी प्रकृति होगी, मनुष्य में अपनी स्वतन्त्रता के लिए उतना ही अधिक उत्साह होगा।" स्थानीय स्वशासन से नागरिकों को शासन की बारीकियों का ज्ञान होता है। **गैटिल** के शब्दों में, "सामान्य हितों पर केन्द्रीय सरकार का नियन्त्रण होने से तथा भिन्न-भिन्न स्थानों के प्रश्नों का हल उसी स्थान के लोगों पर छोड़ देने से एकता से आने वाली शक्ति एवं भिन्नता से आने वाली प्रगति आपस में मिल जाती है।"

(11) **धर्मनिरपेक्ष राज्य**—राज्य का अपना कोई धर्म नहीं होना चाहिए यदि राज्य धर्म पर प्रतिबन्ध लगाता है तो व्यक्तियों की स्वतन्त्रता सीमित होती है।

---

1 "Over inequality materialises over upper class, vulgarises over middle class and brutalizes lower class." —*Mathew Arnold*

2 "Where there are rich and poor, educated and uneducated, we always find a relation of master and servant." —*Laski*

(12) **नागरिकों में स्वतन्त्रता प्रेम एवं त्याग की भावना**—स्वतन्त्रता का वास्तविक संरक्षण नागरिकों के स्वातन्त्र्य प्रेम में निहित है। स्वतन्त्रता की वेदी पर नागरिकों को मर मिटने के लिए तैयार रहना चाहिए।

(13) **स्वतन्त्र प्रेस**—कोई भी तानाशाह स्वतन्त्र प्रेस से ही डरता है। जिन राष्ट्रों में समाचार-पत्रों को पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त होती है वहाँ कभी किसी भी प्रकार की तानाशाही का खतरा नहीं होता। **नेपोलियन बोनापार्ट** ने कहा था, "मुझे तीन हजार तलवारों से इतना भय नहीं लगता जितना तीन समाचार पत्रों से।" **मैकाले** ने कहा है कि, "लोकमत के निर्माण की सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण एजेन्सियों में एक प्रेस भी है।" **पैरिक्लीज** ने कहा था, "स्वतन्त्रता का रहस्य साहस है और उसका साहस निर्माण प्रेस द्वारा हो सकता है।"

आर्थिक समानता के अभाव में राजनीतिक स्वतन्त्रता व्यर्थ है—इन दोनों में सम्बन्ध जानने से पहले दोनों का तात्पर्य समझना आवश्यक है।

राजनीतिक स्वतन्त्रता—राजनीतिक स्वतन्त्रता का अर्थ राज्य के कार्यों में नागरिकों द्वारा सक्रिय रूप से भाग लेना है। अर्थात् राजनीतिक स्वतन्त्रता उस अवस्था को कहा जाता है जिसमें नागरिक अपने नागरिकता के अधिकारों का उपभोग कर सकें। नागरिक को अपने प्रतिनिधियों को चुनने और स्वयं प्रतिनिधि बनने का अधिकार हो। इस प्रकार राजनीतिक स्वतन्त्रता शासन कार्यों में भाग लेने की शक्ति है। **लास्की** के शब्दों में, "राज्य के कार्यों में सक्रिय रूप से भाग लेने के अधिकार को राजनीतिक स्वतन्त्रता कहते हैं।"

आर्थिक समानता—आर्थिक समानता से तात्पर्य है कि समाज में व्यक्ति को अपनी मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति की चिन्ता न हो। उसके भोजन, वस्त्र और आवास की सुविधा हो। समाज में आर्थिक असमानता अधिक न हो। सभी को रोजगार और व्यवसाय की सुविधा के समान अवसर हों। व्यक्ति को अपना पेट भरने के लिए किसी के सामने अपना हाथ न फैलाना पड़े। उद्योग में प्रजातन्त्र हो अर्थात् मजदूरों का उद्योगों के प्रबन्ध में भी हिस्सा हो।

राजनीतिक स्वतन्त्रता आर्थिक समानता पर आधारित—समाज में राजनीतिक स्वतन्त्रता का वास्तव में प्रयोग तभी किया जा सकता है जबकि समाज में आर्थिक समानता विद्यमान हो। **कोल** के शब्दों में, "आर्थिक स्वतन्त्रता के अभाव में राजनीतिक स्वतन्त्रता एक कल्पित वस्तु है।" आर्थिक स्वतन्त्रता ही वह वातावरण तैयार करती है जिसमें राजनीतिक स्वतन्त्रता को फलने-फूलने का अवसर मिले। राजनीतिक स्वतन्त्रता और आर्थिक समानता में निम्न सम्बन्ध पाए जाते हैं—

1. आर्थिक स्वतन्त्रता के अभाव में लोगों में मन्दी और बेकारी आ जाती है जिससे विश्वव्यापी संकट भी आ सकता है। ऐसी स्थिति में बहुसंख्यक जनता अपना मानसिक सन्तुलन और शक्ति गँवा बैठती है जिसके परिणामस्वरूप राजनीतिक स्वतन्त्रता एक कल्पित आदर्श लगती है। ऐसी स्थिति में जनता की राजनीतिक स्वतन्त्रता निरंकुश शासकों के हाथों में चली जाती है, जैसे—1930-32 की भीषण आर्थिक मंदी के चक्र से निकालने के लिए हिटलर ने जर्मनी की सत्ता अपने हाथों में ले ली।

2. आर्थिक स्वतन्त्रता के अभाव में समाज में निरन्तर शोषण चक्र चलता है जिसके फलस्वरूप समाज में गरीबी, अशिक्षा, सामाजिक शोषण, विशृंखलता आदि विकसित होते हैं

जो जनतन्त्र के विनाश के कारण होते हैं और जनतन्त्र के विनाश से राजनीतिक स्वतन्त्रता समाप्त होती है।

3. आर्थिक समानता के अभाव में समाज में धनी तथा निर्धन वर्ग पैदा होते हैं जो शोषक और शोषित के रूप में उभरते हैं। धनी वर्ग धन के आधार पर राजनीतिक स्वतन्त्रता को स्वार्थ पूर्ति का साधन मानता है।

4. आर्थिक समानता के अभाव में न्याय व्यवस्था भी धनी तथा शोषक वर्ग से प्रभावित हो जाती है। न्यायाधीश कानूनों को धनिक वर्ग के स्वार्थ के लिए प्रयोग करते हैं।

5. **प्रो. लास्की** के अनुसार, "आर्थिक स्वतन्त्रता के अभाव में धनी वर्ग शासक के गुणों की शिक्षा पाता है और गरीबों का मस्तिष्क सदा अधीनता में दबा रहता है। आर्थिक परतन्त्रता से पीड़ित व्यक्ति राजनीतिक स्वतन्त्रता का उपभोग नहीं कर पाता है क्योंकि वह यन्त्रवत् काम करता रहता है और उपक्रम शक्ति समाप्त हो जाती है।"

6. एक निर्धन व्यक्ति को धर्म, ईमान, राजनीति, सभी कुछ रोटी के रूप में दिखाई देती है। पं. नेहरू के अनुसार—"भूखे व्यक्ति के लिए मत का कोई मूल्य नहीं होता।"

7. धनिक वर्ग प्रजातन्त्र के प्राण प्रेस और विचार अभिव्यक्ति पर अपना नियन्त्रण कर लेते हैं जिनका प्रयोग वे अपने मत औरों पर लादने के लिए करते हैं और निर्धन वर्ग का शोषण का कारण बनते हैं।

इस प्रकार आर्थिक समानता के बिना राजनैतिक स्वतन्त्रता कभी वास्तविक नहीं हो सकती है। अतः लास्की का कथन सत्य है कि, "आर्थिक समानता के बिना राजनीतिक स्वतन्त्रता कभी भी वास्तविक नहीं हो सकती है।" कोल के शब्दों में, "आर्थिक समानता के अभाव में राजनीतिक स्वतन्त्रता केवल एक कल्पित वस्तु या भ्रम है।"

स्वतन्त्रतावाद

स्वतन्त्रतावाद शब्द स्वतन्त्रता के महत्व को दर्शाता है। स्वतन्त्रता की धारणा राज्य के प्रारम्भ से पायी जाती रही है। यूनान के नगर राज्यों में दास और स्वामी प्रथा, इसका प्रमाण है। स्वतन्त्र होने और रहने के लिए विश्व के इतिहास में अनेक युद्ध और विद्रोह इसके साक्ष्य हैं। एक ओर जहाँ विश्व राज्य स्थापित करने के लिए सिकन्दर महान् के आक्रमण प्रसिद्ध हैं, वहीं चन्द्रगुप्त मौर्य द्वारा सैल्यूकस की पराजय प्रसिद्ध है। फ्रांसीसी क्रान्ति, अमरीकी स्वतन्त्रता का युद्ध, साम्यवादी क्रान्ति जैसी अनेक घटनाओं से विश्व का इतिहास भरा पड़ा है। भारत में अनेक राजाओं के परस्पर युद्ध, अंग्रेजों द्वारा भारत को पराधीन करने पर भारत का स्वतन्त्रता संग्राम, प्रथम और द्वितीय विश्वयुद्ध, कुवैत पर ईराक द्वारा कब्जा करने पर अमरीका द्वारा 22 देशों की सेना के साथ आक्रमण आदि अनेक उदाहरण इसके लिए पर्याप्त हैं।

स्वतन्त्रता की यह धारणा स्वतन्त्रतावाद का बोध कराती है। स्वतन्त्रता की यह धारणा ही है जो देश के प्रति व्यक्ति में देशप्रेम, मातृभूमि, पितृभूमि की धारणा को जीवित बनाये रखती है। एक सैनिक अपनी सीमाओं की रक्षा और स्वतन्त्रता के लिए तपते रेगिस्तान और हाड़ कँपकँपा देने वाली सर्दी में भी सीमा पर डटा रहता है। किसी कवि की पंक्तियाँ उल्लेखनीय हैं—

विषुवत रेखा का वासी जो जीता है नित हाँफ-हाँफ कर,
रखता है अनुराग अलौकिक वह भी अपनी मातृभूमि पर।

Scanned with CamScanner

हिन्द वालों जो हिन्द में तन से जीता है मिल करके अधिकार,
का देश है अपना कितना यह भी अपनी मातृभूमि पर॥

आज स्वतन्त्रता की हवा में साँस लेना जैसे प्रत्येक राष्ट्र का अधिकार है उसी प्रकार प्रत्येक नागरिक अपनी स्वतन्त्रता के लिए आतुर है। जब भी कभी उसकी स्वतन्त्रता पर कुठाराघात होता है वह तुरन्त प्रतिक्रिया व्यक्त करता है। अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए वह आन्दोलन का सहारा लेता है। अन्तर्राष्ट्रीय मानवाधिकार, UNO तक में अपना पक्ष रखता है। यदि तब भी उसको स्वतन्त्रता नहीं मिलती है तो हिंसा और विरोध का भी सहारा लेता है। 1971 में जब पूर्वी पाकिस्तान में वहाँ की जनता की आवाज नहीं सुनी गई तो शेख मुजीबुर्रहमान के नेतृत्व में आन्दोलन चला और परिणामस्वरूप पूर्वी पाकिस्तान के स्थान पर बंगला देश बन गया। यह स्वतन्त्रतावाद का ही प्रतीक है।

समानता
(EQUALITY)

समानता अच्छे सामाजिक जीवन की अनिवार्य शर्त है। समानता के सिद्धान्त का जन्म विशेषाधिकार प्राप्त वर्ग के विरुद्ध प्रतिक्रिया का परिणाम है। समाज में बहुत समय से असमानता पाई जाती रही है। अल्पसंख्यक धनिक वर्ग बहुसंख्यक निर्धन वर्ग का शोषण करता रहा है। समाज की इस असमानता का राजनीतिशास्त्र के दार्शनिकों ने विरोध किया है। फ्रांस की राष्ट्रीय सभा ने 1789 ई. में मनुष्य के अधिकारों के घोषणा पत्र (Declaration of Human Rights) में मानव समानता के सिद्धान्त को स्वीकार करते हुए कहा गया है कि, "मनुष्य स्वतन्त्र और समान पैदा हुए हैं और वे अपने अधिकारों के विषय में भी समान और स्वतन्त्र रहते हैं।" इसी प्रकार संयुक्त राज्य अमरीका के स्वतन्त्रता सम्बन्धी घोषणा-पत्र में कहा गया है कि, "हम इस सत्य को स्वतः स्वीकार करते हैं कि सब मनुष्य समान बनाए गए हैं।"

समानता का गलत अर्थ—साधारणतया लोग समझते हैं कि प्रकृति ने मनुष्य समान बनाए हैं। सभी समान पैदा हुए हैं। सभी समान हैं। सभी की आय, कार्य, सुविधाएं बराबर हैं। सभी के पास सम्पत्ति समान मात्रा में है। ये धारणा भ्रमात्मक है। वास्तव में एक मनुष्य दूसरे मनुष्य के समान नहीं। प्रकृति ने भी मानव-मानव में भेद किया है। रंग, रूप, आकृति, कद, आकार, ऊँचाई, सुन्दरता, बुद्धि आदि के आधार पर एक व्यक्ति दूसरे से भिन्न है। इतनी बड़ी दुनिया में ऐसे दो व्यक्ति खोजना कठिन ही नहीं असम्भव है कि जो हर प्रकार से एक समान हों। यहाँ तक कि दो सगे भाई या जुड़वाँ भाई भी स्वभाव, शरीर की रचना, बुद्धि आदि के आधार पर एक समान नहीं होते हैं। अप्पादोराय के शब्दों में, "यह कहना कि सब मनुष्य समान हैं ऐसे ही गलत है जैसे यह कहना कि पृथ्वी समतल है।"

समानता का सही अर्थ—समानता का सही अर्थ यह है कि सभी व्यक्तियों को बिना किसी जाति, धर्म, भाषा, रंग, सम्पत्ति, वंश, लिंग, व्यवसाय आदि के भेदभाव के सभी व्यक्तियों को अपने विकास के समान अवसर मिल सकें। सभी नागरिकों को अधिकार समान रूप से बिना किसी भेदभाव के मिलें। सभी को अपने व्यक्तित्व के विकास के लिए शिक्षा, आवास, भोजन, वस्त्र और अन्य आवश्यक सुविधाएँ प्राप्त हों। समानता के नकारात्मक रूप में उन सभी विशेषाधिकारों का अन्त हो जो जन्म, सम्पत्ति, धर्म, रंग, भाषा, जाति आदि के आधार पर कुछ वर्गों के लोगों को मिले हों तथा समानता के सकारात्मक रूप में प्रत्येक व्यक्ति को बिना

किसी भेद-भाव के विकास के लिए समान अवसर मिलें। समानता की परिभाषा करते हुए लास्की ने कहा है कि, "सर्वप्रथम समानता का अर्थ यह है कि समाज में कोई विशेष हित न हो, द्वितीय प्रत्येक व्यक्ति को अपनी योग्यता और शक्ति के पूर्ण उपयोग का अवसर प्राप्त हो।"

समानता के प्रकार (Kinds of Equality)

समानता के निम्न प्रकार हैं—

(1) **सामाजिक समानता** (Social Equality)—सामाजिक समानता का तात्पर्य है कि व्यक्ति को समाज का सदस्य होने के नाते सभी को समान समझा जाए। जाति, धर्म, भाषा, रंग, नस्ल, लिंग, व्यवसाय, धन, वंश, वर्ग, वर्ण आदि के आधार पर मनुष्य-मनुष्य में अन्तर न किया जाए। व्यक्ति को सामाजिक उत्थान के समान अवसर मिलें। सामाजिक समानता के लिए संविधान में व्यवस्था होना, कानूनी व्यवस्था होने के साथ-साथ समाज में सामाजिक चेतना का होना भी आवश्यक है। दक्षिण अफ्रीका में रंग-भेद का अन्तर अभी भी है। कर्नवाल अरोरा के शब्दों में, "सामाजिक समानता वहाँ स्थापित होती है जहाँ जन्म, नस्ल, जाति या लिंग आदि के आधार पर व्यक्ति-व्यक्ति का अन्तर नहीं किया जाता है।"

(2) **नागरिक समानता** (Civil Equality)—नागरिक समानता का तात्पर्य है कि राज्य के प्रत्येक नागरिक समान हों उनमें राज्य, वंश, रंग, जाति, लिंग, धर्म, भाषा, क्षेत्र, नस्ल आदि के आधार पर अन्तर न करे। प्रत्येक नागरिक राज्य से प्राप्त समस्त अधिकारों का समान रूप से आनन्द उठा सके। कानून का संरक्षण सभी नागरिकों को समान रूप से प्राप्त हो।

(3) **राजनीतिक समानता** (Political Equality)—शासन के संचालन में सभी नागरिकों को समान अधिकार मिले, यही राजनीतिक समानता है। प्रत्येक नागरिक को मतदान, सार्वजनिक पद प्राप्ति तथा विधायिका का सदस्य बनने, सरकार की आलोचना करने, सरकार को प्रार्थना-पत्र देने का समान अधिकार है। राजनीतिक समानता प्रजातन्त्र का आधार है।

(4) **आर्थिक समानता** (Economic Equality)—आर्थिक समानता का तात्पर्य आय की समानता से न होकर उन्नति के अवसर की समानता से है। लास्की के शब्दों में, "समानता का तात्पर्य यह नहीं है कि प्रत्येक व्यक्ति के साथ एक जैसा व्यवहार किया जाए अथवा प्रत्येक व्यक्ति को समान वेतन दिया जाए। यदि ईंट ढोने वाले का वेतन एक प्रसिद्ध गणितज्ञ अथवा वैज्ञानिक के बराबर कर दिया जाए तो इससे समाज का उद्देश्य ही नष्ट हो जाएगा। इसलिए समानता का यह अर्थ है कि कोई विशेष अधिकार वाला वर्ग न रहे और सबको उन्नति के समान अवसर प्राप्त हों।" आर्थिक समानता का सही अर्थ यह है कि सभी व्यक्तियों की मौलिक आवश्यकताएँ पूरी हो सकें। समाज में आर्थिक आधार पर एक व्यक्ति दूसरे का गुलाम बनने के लिए मजबूर न हो जाए। प्रत्येक व्यक्ति को अपने व्यक्तित्व के विकास में धन के आधार पर रुकावट का सामना न करना पड़े। समाज में आर्थिक शोषण न हो, अर्थव्यवस्था का आधार लोक-कल्याण हो। समाज में प्रत्येक व्यक्ति को जीविकोपार्जन, पारिश्रमिक प्राप्ति, विश्राम आदि की सुविधा प्राप्त हो। सरकार मनुष्य की बीमारी, बेकारी, अयोग्यता, अक्षमता के विरुद्ध उसे सुरक्षा प्रदान करे।

(5) **सांस्कृतिक समानता** (Cultural Equality)—सांस्कृतिक समानता का तात्पर्य है कि प्रत्येक व्यक्ति को शिक्षा, साहित्य, आमोद-प्रमोद, संस्कृति के रख-रखाव और संवर्धन का समान अधिकार प्राप्त हो। मनुष्य का अपना चारित्रिक, नैतिक विकास संस्कृति की समानता पर ही निर्भर है।

Scanned with CamScanner

स्वतन्त्रता और समानता में सम्बन्ध (Relation between Liberty and Equality)

स्वतन्त्रता और समानता के सम्बन्ध में विचारक एकमत नहीं हैं। इस सम्बन्ध में दो मत हैं—

(1) **स्वतन्त्रता और समानता परस्पर विरोधी हैं**—इस विचारधारा के समर्थक व्यक्तिवादी विचारक यह मानते हैं कि स्वतन्त्रता प्रकृति की देन है। स्वतन्त्रता का अर्थ बन्धनों का अभाव है जबकि समानता में बन्धनों का होना अनिवार्य है। अतः स्वतन्त्रता और समानता साथ-साथ नहीं रह सकती हैं। **लॉर्ड एक्टन** के शब्दों में, "समानता की उत्कट अभिलाषा ने स्वतन्त्रता की अभिलाषा को बेकार कर दिया है।"

(2) **स्वतन्त्रता और समानता एक-दूसरे की पूरक हैं**—कुछ विद्वान मानते हैं कि स्वतन्त्रता और समानता एक-दूसरे की पूरक हैं, न कि विरोधी। समानता स्वतन्त्रता का आधार है। इसके समर्थक टॉनी (Towney) का कहना है कि, "समानता की एक प्रचुर मात्रा स्वतन्त्रता की विरोधी नहीं है, अपितु उसके लिए अत्यन्त आवश्यक है।" **ह्यूम** के शब्दों में, "समानता के नियम की अवहेलना करने से धनिकों की तुष्टि में वृद्धि होती है और दरिद्रों की तुष्टि का ह्रास होता है।" मैथ्यू आरनॉल्ड के अनुसार, "हमारी असमानता उच्च वर्ग को धनलोलुप, मध्य वर्ग को अशिष्ट और निम्न वर्ग को पशु बना देती है।" **लास्की** ने दोनों का सम्बन्ध बताते हुए कहा है कि, "स्वतन्त्रता और समानता में कोई विरोध नहीं है अपितु वे एक-दूसरे के पूरक हैं।"

समानता और स्वतन्त्रता में सम्बन्ध (Relation between Equality and Liberty)

समानता और स्वतन्त्रता दोनों विचारधाराएँ एक-दूसरे की विरोधी न होकर एक-दूसरे की पूरक हैं। स्वतन्त्रता का अस्तित्व नियन्त्रणों के अभाव में नहीं हो सकता है। वह स्वेच्छाचारिणी ही होगी। समाज के सभी सदस्यों को अपने व्यक्तित्व के विकास के लिए समान अवसर मिलने से ही स्वतन्त्रता बनी रह सकती है। समानता के अभाव में स्वतन्त्रता सारहीन है और स्वतन्त्रता के अभाव में समानता आधारहीन है। **प्रो. पोलार्ड** के शब्दों में, "स्वतन्त्रता की समस्या का केवल एक ही हल है, यह समानता में स्थिर रहती है।" स्वतन्त्रता और समानता एक सिक्के के दो पहलू हैं। **डॉ. आशीर्वादम्** के अनुसार, "फ्रांस के क्रान्तिकारियों ने जब स्वतन्त्रता, समानता और भ्रातृत्व का नारा लगाया था तब वे न तो पागल थे और न मूर्ख।" **लॉर्ड एक्टन** ने भी स्वीकार किया है कि, "विरोधाभास यह कि समानता और स्वतन्त्रता जो कि विरोधी विचार के रूप में प्रारम्भ होते हैं, विश्लेषण करने पर एक-दूसरे के लिए आवश्यक हो जाते हैं। सत्य यह है कि समानता के अर्थ की उचित व्याख्या स्वतन्त्रता के सन्दर्भ में ही दी जा सकती है।" समानता के अभाव में स्वतन्त्रता नहीं हो सकती है, कुछ कारण निम्न हैं—

1. यदि राजनैतिक समानता नहीं होगी तो जनता के एक बहुत बड़े भाग को शासन कार्य में भाग लेने का अवसर न मिल पाएगा, अतः स्वतन्त्रता का कोई मूल्य नहीं होगा।

2. यदि नागरिक समानता नहीं होगी तो नागरिक अधिकारों का प्रयोग नहीं कर पाएंगे, जिससे स्वतन्त्रता नहीं मिल पाएगी।

3. यदि सामाजिक समानता नहीं होगी तो स्वतन्त्रता कुछ व्यक्तियों तक ही सीमित हो जाएगी।

Scanned with CamScanner

11

समुदायवाद

[COMMUNITARIANISM]

"समुदाय सामाजिक जीवन का सम्पूर्ण संगठन है।" —ऑगबर्न

परिचय (Introduction)—मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। मनुष्य समाज में समुदाय बनाकर रहता है। समुदाय शब्द का प्रयोग किसी बस्ती, ग्राम, शहर या जनजाति के लिए किया जाता है। इसका अर्थ है कि जब एक विशेष क्षेत्र में रहने वाले व्यक्ति एक-दूसरे से किसी विशेष स्वार्थ के कारण सम्बन्धित नहीं होते बल्कि उसी क्षेत्र में अपना सामान्य जीवन व्यतीत करते हैं, तब व्यक्तियों के समूह को ही समुदाय कहा जाता है। इसका तात्पर्य है कि किसी आर्थिक संगठन, राजनीतिक दल अथवा धार्मिक संगठन को समुदाय नहीं कहा जा सकता क्योंकि इनमें व्यक्ति अपने किसी विशेष उद्देश्य या स्वार्थ की पूर्ति करता है जबकि ग्राम अथवा जनजाति के अन्दर व्यक्ति अपनी सभी प्रकार की आर्थिक, धार्मिक, राजनीतिक तथा सांस्कृतिक आवश्यकताओं को पूरा करते हुए अपना सामान्य जीवन व्यतीत करता है। इसलिए ग्राम अथवा जनजाति को समुदाय कहा जाता है।

समुदायवाद शब्द समुदाय से बना है इसलिए अपेक्षित होगा कि समुदायवाद के विषय में विचार-विमर्श करने से पूर्व समुदाय शब्द को समझ लिया जाए।

समुदाय की परिभाषाएँ (Definitions of Community)

विभिन्न परिभाषाओं के द्वारा समुदाय की अवधारणा को जिस रूप में स्पष्ट किया गया है, वह इसके शाब्दिक अर्थ से बहुत भिन्न है। शाब्दिक दृष्टिकोण से 'समुदाय' अंग्रेजी के शब्द 'Community' का हिन्दी रूपान्तर है। अंग्रेजी का 'Community' शब्द लैटिन भाषा के दो शब्दों 'Com' तथा 'Munis' से मिलकर बना है। 'Com' का अर्थ है साथ-साथ तथा 'Munis' का अर्थ है सेवा करना। इस प्रकार एक साथ रहकर सेवा करने वाले व्यक्तियों के समूह को 'समुदाय' कहा जा सकता है। वास्तविकता यह है कि समुदाय केवल व्यक्तियों का समूह नहीं है बल्कि एक ऐसा समूह है जो किसी निश्चित भौगोलिक क्षेत्र में रहते हुए अपनी सभी आवश्यकताओं को पूरा करता है। इस अर्थ में समुदाय एक क्षेत्रीय अवधारणा है। कुछ परिभाषाएँ अग्रलिखित हैं—

मैकाइवर और पेज (MacIver and Page) के अनुसार, "जहाँ कहीं एक छोटे या बड़े समूह के सदस्य एक साथ रहते हुए किसी विशेष उद्देश्य में भाग न लेकर सामान्य जीवन की मौलिक दशाओं में भाग लेते हैं तो उस समूह को हम समुदाय कहते हैं।"[1]

ग्रीन (Green) के अनुसार, "समुदाय व्यक्तियों का ऐसा समूह है जो एक छोटे क्षेत्रीय घेरे में रहता है तथा जिसके सदस्यों के जीवन का एक सामान्य ढंग होता है।"[2] इस प्रकार ग्रीन ने भी समुदाय को एक स्थानीय अथवा क्षेत्रीय समूह के रूप में स्पष्ट करते हुए एक सामान्य जीवन-विधि को समुदाय का महत्वपूर्ण तत्व माना है।

किंग्सले डेविस (Kingsley Davis) के शब्दों में, "समुदाय वह सबसे छोटा क्षेत्रीय समूह है जिसके अन्दर सामाजिक जीवन के समस्त पहलू आ जाते हैं।"

सदरलैण्ड (Sutherland) ने 'सामान्य जीवन' के अर्थ पर प्रकाश डालते हुए समुदाय को परिभाषित किया है। आपके शब्दों में, "समुदाय एक ऐसा स्थानीय क्षेत्र है जिसमें रहने वाले व्यक्ति एक ही भाषा का प्रयोग करते हैं, समान लोकाचारों को मानते हैं, लगभग समान विचार और अनुभव प्रदर्शित करते हैं तथा समान मनोवृत्तियों को लेकर व्यवहार करते हैं।"

बोगार्डस (Bogardus) का कथन है कि "समुदाय एक ऐसा सामाजिक समूह है जिसमें कुछ सीमा तक 'हम की भावना' होती है तथा जो एक निश्चित क्षेत्र में निवास करता है।"[3] इस परिभाषा से यह स्पष्ट होता है कि 'हम की भावना' समुदाय की एक प्रमुख विशेषता है। यही भावना एक समुदाय के सदस्यों को एक-दूसरे से बाँधे रखती है।

ऑगबर्न तथा निमकॉफ (Ogburn and Nimkoff) ने मैकाइवर के कथन का ही समर्थन करते हुए लिखा है, "किसी सीमित क्षेत्र के अन्दर रहने वाले सामाजिक जीवन के सम्पूर्ण संगठन को ही समुदाय कहा जाता है।"[4]

गिन्सबर्ग (Ginsberg) के अनुसार, "समुदाय का अर्थ सामाजिक प्राणियों के एक ऐसे समूह से है जो एक सामान्य जीवन व्यतीत करता हो। इस सामान्य जीवन में उन सभी सम्बन्धों को सम्मिलित किया जाता है जो इसका निर्माण करते हैं या इसके फलस्वरूप उत्पन्न होते हैं।" इस परिभाषा में भी 'सामान्य जीवन' को समुदाय की सबसे बड़ी विशेषता के रूप में स्वीकार किया गया है।

मेंजर (Manzer) ने समुदाय की अति संक्षिप्त परिभाषा देते हुए कहा है कि "एक समाज जो एक निश्चित भू-भाग में रहता है, समुदाय कहलाता है।"[5]

---

1. "Whenever the members of any group, small or vast, living together in such a way that they share not this or that particular interest, but the basic conditions of life, we call that group a community." —*R. M. MacIver and C.H. Page, Society*, p. 9
2. "A community is a cluster of people living within a narrow territorial radius who share a common way of life." —*A. W. Green, Sociology*
3. "A community is a social group with some degree of 'we feeling' and living in a given area." —*E. S. Bogardus, Sociology*, p. 122
4. "A Community may be thought of as the total organisation of social life within limited areas." —*Ogburn and Nimkoff, A Handbook of Sociology*, p. 2[illegible]
5. "A society that inhabits a definite geographic area is known as a community." —*A. C. Manzer, Practical Sociology and Practical Problems*, p. 9

उपरोक्त परिभाषाओं से स्पष्ट होता है कि समुदाय तुलनात्मक रूप से एक बड़ा समूह है जो एक विशेष भौगोलिक क्षेत्र में अपना सामान्य जीवन व्यतीत करता है तथा सामुदायिक भावना (Community sentiment) अथवा 'हम की भावना' (We feeling) द्वारा संगठित रहता है। प्रत्येक समुदाय का एक विशेष सामाजिक जीवन होता है जिसके आधार पर उसे दूसरे समुदायों से अलग किया जा सकता है।

समुदाय की विशेषताएँ (Characteristics of Community)

समुदाय की विभिन्न परिभाषाओं से यह स्पष्ट हो जाता है कि विभिन्न समाजशास्त्रियों में समुदाय की विशेषताओं को लेकर कोई एकमत नहीं है। **मैकाइवर** ने 'स्थानीय क्षेत्र' तथा 'एक विशिष्ट सामाजिक जीवन' को समुदाय की सबसे प्रमुख विशेषताओं के रूप में स्वीकार किया है, जबकि **गिन्सबर्ग** ने 'सामान्य जीवन' को इसकी आधारभूत विशेषता माना है। इसी तरह **बोगार्डस** ने हम की भावना अथवा सामुदायिक भावना को विशेष महत्व दिया, जबकि **सदरलैण्ड** ने 'एक विशेष संस्कृति' को समुदाय की मुख्य पहचान के रूप में स्पष्ट किया है। इन्हीं विद्वानों ने समुदाय की विवेचना में कुछ अन्य विशेषताओं का भी उल्लेख किया है। **रॉबर्ट रेडफील्ड** ने सभी समुदायों को दो मुख्य भागों में विभाजित करके इनकी प्रकृति को स्पष्ट किया है। इन्हें रेडफील्ड ने लघु समुदाय (Little community) तथा वृहत् समुदाय (Great community) कहा है। एक जनजाति, गाँव तथा कस्बा लघु समुदाय के उदाहरण हैं। लघुता, विशिष्टता, समरूपता और आत्मनिर्भरता इन समुदायों की मुख्य विशेषताएँ हैं। दूसरी ओर, बड़े-बड़े नगर वृहत् समुदाय के उदाहरण हैं। इन समुदायों को बड़े आकार, जनसंख्या की विभिन्नता, श्रम-विभाजन तथा विशेषीकरण के आधार पर पहचाना जा सकता है। इस दृष्टिकोण से हम समुदाय की सभी विशेषताओं को दो मुख्य भागों—प्रमुख और गौण—में विभाजित करके स्पष्ट करेंगे।

1. समुदाय की मुख्य विशेषताएँ (Basic Characteristics of Community)

(1) **व्यक्तियों का बड़ा समूह**—समुदाय केवल व्यक्तियों का समूह ही नहीं है बल्कि यह इतना बड़ा समूह है जिसमें एक-दूसरे की सहायता से सभी सदस्यों की सभी आवश्यकताओं की पूर्ति हो सके। इस दृष्टिकोण से अन्य सामाजिक समूहों की तुलना में समुदाय का आकार अधिक बड़ा होता है। दूसरी बात यह है कि समुदाय व्यक्तियों का समूह होने के कारण एक मूर्त संगठन है जिसकी प्रकृति और विशेषताओं को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है।

(2) **निश्चित भू-भाग**—प्रत्येक समुदाय का एक निश्चित भौगोलिक क्षेत्र अवश्य होता है। इसी को मैकाइवर ने 'स्थानीय क्षेत्र' कहा है। यह क्षेत्र वह होता है जिसे उसमें रहने वाले लोग अपना मानते हैं, इसी के सन्दर्भ में अपना परिचय देते हैं तथा उसी क्षेत्र में रहते हुए अपनी सभी प्रमुख आवश्यकताओं को पूरा करते हैं। इस दृष्टिकोण से गाँव एक समुदाय है क्योंकि उसका एक निश्चित भू-भाग होता है।

खानाबदोशी झुण्ड (Nomadic groups) इसीलिए समुदाय के अन्तर्गत नहीं आते क्योंकि उनका कोई एक निश्चित निवास-क्षेत्र नहीं होता। वास्तव में 'हम की भावना' भी एक निश्चित भू-भाग में रहने पर ही विकसित हो पाती है। **सैम्पिल** (Semple) ने इस सम्बन्ध में कहा है कि **"मनुष्य पृथ्वी के धरातल की उपज है।"** यद्यपि समुदाय के निश्चित भू-भाग का

तात्पर्य यह नहीं है कि इसमें कभी भी परिवर्तन न होता हो। उदाहरण के लिए, यदि उद्योगों से वृद्धि होने से एक गाँव की जनसंख्या बढ़ जाये तो उसके भू-भाग का भी विस्तार हो सकता है। इसके बाद भी यह सच है कि जब कभी भी किसी समुदाय के भू-भाग में परिवर्तन होता है तो उसकी दूसरी विशेषताओं में भी कुछ परिवर्तन होने लगता है।

(3) **सामुदायिक भावना**—इसी भावना को 'हम की भावना' भी कहा जाता है। सामुदायिक भावना का तात्पर्य एक ऐसी भावना से है जिसके द्वारा व्यक्ति किसी विशेष समूह को अपना मानते हैं तथा उसके प्रत्येक सदस्य के सुख-दुःख में रुचि लेते हैं। उसकी अच्छाई-बुराई को अपनी अच्छाई-बुराई मानते हैं और उसी की सफलता को अपनी सफलता समझते हैं। **मैकाइवर** ने लिखा है कि जब एक निश्चित क्षेत्र में बहुत-से व्यक्ति काफी समय तक साथ-साथ रहते हैं, तब उनमें समान प्रकार की मनोवृत्तियाँ, व्यवहार और रुचियाँ विकसित हो जाती हैं। इसके फलस्वरूप वे लोग यह समझने लगते हैं कि वे सभी एक-दूसरे के समान हैं तथा एक-दूसरे को सहयोग देना उनका नैतिक कर्तव्य है। समुदाय के हित व्यक्तिगत स्वार्थों से अधिक महत्वपूर्ण बन जाते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि सामुदायिकता की भावना का विकास बहुत-कुछ एक स्थानीय क्षेत्र में रहने के कारण ही होता है। यही कारण है कि हम सबसे पहले अपने पड़ोस के सदस्य होते हैं, इसके बाद गाँव के, फिर नगर के और सबसे बाद में राष्ट्र के। इसका तात्पर्य यह है कि स्थानीय दूरी बढ़ने के साथ ही सामुदायिक भावना में भी एक स्पष्ट कमी दिखाई देती है। इससे स्पष्ट होता है कि जिस समूह के प्रति हमारी 'सामुदायिक भावना' जितनी अधिक तीव्र होगी, वह समूह हमारा उतना ही अधिक निकटवर्ती समुदाय होगा। उदाहरणार्थ, यदि विदेश में जाकर आपको अपने देश का व्यक्ति मिल जाता है तो आपको प्रसन्नता होती है, यदि वह व्यक्ति आपके प्रान्त और जिले का होता है, तब आपको अति प्रसन्नता होती है और यदि वह व्यक्ति आपके शहर या कस्बे का होता है तो उसे गले लगा लेंगे। यह भावना सामुदायिक भावना ही है जिसके कारण आपको उस व्यक्ति के प्रति लगाव या अपनेपन की अनुभूति होती है।

इस सामुदायिक भावना के तीन प्रमुख अंग होते हैं जो निम्नलिखित हैं—

(अ) **हम की भावना**—सामुदायिक भावना का प्रमुख अंग 'हम की भावना' है। व्यक्तियों के सोचने-विचारने और कार्य करने की पद्धतियों में 'हम की भावना' होती है। इसके अन्तर्गत व्यक्ति समुदाय में 'हम की भावना' के कारण ही एक-दूसरे के सुख-दुःख में हाथ बँटाता है।

(ब) **योगदान की भावना**—योगदान की भावना का अर्थ यह है कि समुदाय के व्यक्ति यह अनुभव करते हैं कि समुदाय के कार्यों में योगदान करना उनका दायित्व है और इसी भावना के वशीभूत होकर अपनी-अपनी स्थिति और पद के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति समुदाय के कार्यों में योगदान करता रहता है।

(स) **निर्भरता की भावना**—निर्भरता की भावना भी सामुदायिक भावना का आवश्यक अंग है। इसका अभिप्राय यह है कि व्यक्ति अपने आपको समुदाय पर निर्भर समझता है, साथ ही बिना समुदाय के अपना अस्तित्व असम्भव समझता है। इसी कारण व्यक्ति समुदाय से मिलकर चलता है और इस प्रकार इस भावना से भी सामुदायिक भावना की अभिव्यक्ति होती है।

(4) **सामान्य जीवन**—सभी समाजशास्त्री यह मानते हैं कि 'सामान्य जीवन' समुदाय की एक मुख्य विशेषता है। सामान्य जीवन का तात्पर्य मुख्यतः चार विशेषताओं से है—

Scanned with CamScanner

(क) सामान्य दृष्टिकोण, (ख) सामान्य आर्थिक स्थिति, (ग) सामान्य आवश्यकताएँ तथा (घ) सामान्य संस्कृति। सर्वप्रथम एक समुदाय के सभी सदस्यों का दृष्टिकोण लगभग एक जैसा होता है। वे अपनी समस्याओं तथा व्यवहार के लिए समान मनोवृत्तियाँ प्रदर्शित करते हैं। दूसरे, एक समुदाय के सदस्यों की आर्थिक तथा सामान्य स्थिति इस दृष्टिकोण से एक जैसी होती है कि उनमें कोई व्यक्ति बहुत अधिक धनी और कोई बहुत अधिक निर्धन नहीं होता। दूसरे शब्दों में, समुदाय के अन्तर्गत न तो आर्थिक वर्गों का निर्माण होता है और न ही अधिक आर्थिक विषमताएँ होती हैं। तीसरे, एक समुदाय के अधिकांश सदस्यों की आवश्यकताएँ लगभग समान होने के कारण ही वे एक सामान्य ढंग से जीवन व्यतीत करते हैं, साथ ही, एक समुदाय की साधारणतया एक सामान्य संस्कृति होती है जिसमें उस समुदाय के निवासियों का गहरा विश्वास हो जाता है तथा इसी संस्कृति के नियमों के अनुसार वे व्यवहार करते रहते हैं।

II. समुदाय की गौण विशेषताएँ (Secondary Characteristics of Community)

(1) स्वतः विकास—अनेक विद्वान यह मानते हैं कि समुदाय एक ऐसा मानव समूह नहीं है जिसका योजनाबद्ध रूप से निर्माण किया जा सके। समुदाय का विकास धीरे-धीरे एक लम्बी प्रक्रिया के द्वारा होता है। कुछ विशेष भौगोलिक अथवा सामाजिक सुविधाओं के कारण जब एक स्थान पर कुछ व्यक्ति स्थायी रूप से रहने लगते हैं, तब अपनी विभिन्न आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए उनमें पारस्परिक सहायता की भावना विकसित होने लगती है। यह 'हम की भावना' विकसित होने पर यह समुदाय कहलाने लगता है।

(2) सामान्य आदर्श नियम—समुदाय की एक प्रमुख विशेषता यह है कि एक समुदाय के सभी सदस्यों का जीवन कुछ सामान्य आदर्श नियमों में व्यतीत होता है। उदाहरण के लिए, प्रत्येक समुदाय में कुछ विशेष प्रकार की परम्पराएँ, प्रथाएँ, लोकाचार तथा जनरीतियाँ पायी जाती हैं जो एक समुदाय को दूसरे समुदायों से पृथक् करती हैं। इनकी नियन्त्रण शक्ति राज्य द्वारा दिये जाने वाले किसी भी दण्ड की तुलना में कहीं अधिक होती है। एक समुदाय के सदस्य जब सामान्य आदर्श नियमों के अन्दर ही जीवन व्यतीत करते हैं तो उनमें अपने आप यह भावना पैदा हो जाती है कि वह सब समान हैं। समुदाय की संस्कृति को प्रभावपूर्ण बनाने में भी यह आदर्श नियम एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। प्रो. गिन्सबर्ग के शब्दों में, "समुदाय का अर्थ उस समस्त जनसंख्या से है जो किसी एक क्षेत्र में रहती हो और जो उनके जीवन के समागम को व्यवस्थित करने वाले नियमों की एक सामान्य व्यवस्था से बँधी हुई हो।"

(3) विशिष्ट नाम—प्रत्येक समुदाय का एक विशेष नाम होता है तथा एक समुदाय के सदस्य अपनी पहचान को समुदाय के नाम के सन्दर्भ में ही स्पष्ट करते हैं। उदाहरण के लिए, प्रत्येक गाँव का एक विशेष नाम होता है तथा एक गाँव के निवासियों की पहचान उनके गाँव के सन्दर्भ में ही की जाने लगती है। इस प्रकार समुदाय का नाम ही उसके सदस्यों को एक-दूसरे के निकट बनाये रखता है। यदि समुदाय के नाम को बदलने की कोशिश की जाती है तो अक्सर उस समुदाय के सदस्यों द्वारा इसका विरोध किया जाता है। मैकाइवर ने लिखा है कि एक 'विशिष्ट नाम' होना समुदाय की अनिवार्य विशेषता नहीं है लेकिन समुदाय के सदस्यों को एकता के बन्धन में बाँधने में इसका कार्य बहुत रचनात्मक है।

(4) स्थायित्व—समुदाय की एक विशेषता यह है कि इसके स्थानीय क्षेत्र, संस्कृति तथा जीवन के ढंग में जल्दी-जल्दी कोई परिवर्तन नहीं होता। उदाहरण के लिए, एक भीड़, श्रोता-समूह या खानाबदोशी झुण्ड ऐसे सामाजिक समूह हैं जिनकी विशेषताओं में बहुत तेजी से परिवर्तन होता रहता है। यही कारण है कि इन्हें समुदाय नहीं माना जा सकता। दूसरी ओर, एक जनजातीय गाँव के स्थानीय-क्षेत्र, व्यावसायिक प्रकृति तथा सामान्य जीवन में तब तक कोई परिवर्तन नहीं होता जब तक औद्योगीकरण या नगरीकरण के कारण उस क्षेत्र की दशाओं में व्यापक परिवर्तन उत्पन्न न हो जायें।

(5) अन्तर्समुदाय—मैकाइवर ने यह स्पष्ट किया कि एक बड़े समुदाय के अन्दर भी अनेक छोटे-छोटे समुदाय विद्यमान हो सकते हैं। इन छोटे समुदायों अथवा अन्तर्समुदायों की विशेषताओं में साधारण भिन्नता होने के बाद भी यह सम्पूर्ण समुदाय की प्रकृति को प्रभावित नहीं करती। उदाहरण के लिए, बिहार की संथाल जनजाति का कोई गाँव 'एक समुदाय' होगा लेकिन इस समुदाय के निर्माण में भी संथाल जनजाति के अनेक टोलों का समावेश हो सकता है। ऐसी दशा में प्रत्येक व्यक्ति अपने टोले वाले अन्तर्समुदाय से अधिक समीपता का अनुभव करेगा लेकिन पूरे समुदाय के लिए भी इसकी निष्ठा में कोई कमी नहीं पाई जायेगी। इससे स्पष्ट होता है कि एक समुदाय अनेक अन्तर्समुदायों से विकसित हो सकता है लेकिन इन सभी से बनने वाले मुख्य समुदाय से ही सदस्य अपनी पहचान की स्पष्ट करते हैं।

समुदाय के प्रकार (Types of Community)—समुदायों के प्रकार विभिन्न विद्वानों द्वारा विभिन्न प्रकार के बताए गए हैं—

1. बोगार्डस के अनुसार (According to Bogardus)

प्रोफेसर ई. एस. बोगार्डस ने सम्भवतः क्षेत्रीय विस्तार को वर्गीकरण का आधार माना है और इसी के अनुसार चार प्रकार के समुदायों का उल्लेख किया है—

(1) ग्रामीण समुदाय (Rural Community),
(2) नगरीय समुदाय (Urban Community),
(3) क्षेत्रीय समुदाय (Regional Community),
(4) राष्ट्रीय समुदाय (National Community)।

ग्रामीण समुदाय मानवीय सभ्यता व संस्कृति के आदि रूप का प्रतिनिधित्व करते हैं, जबकि नगरीय समुदाय उसी के उन्नत, गतिशील व जटिल रूप का। आज यह देखा जाता है कि सम्पूर्ण समाज देश या राष्ट्र, प्रशासन की सुविधा, भाषा, भौगोलिक कारक आदि के दृष्टिकोण से अनेक क्षेत्रीय भागों में बाँट दिया जाता है और उन्हें प्रान्त (Province) या प्रदेश (State) कहा जाता है, जैसे—उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, पंजाब, पश्चिम बंगाल आदि। इन प्रदेशों का एक निश्चित नाम, भौगोलिक क्षेत्र, रहन-सहन व संस्कृति का एक सामान्य प्रतिमान (pattern) होता है। इसलिए प्रो. बोगार्डस ने इन्हें क्षेत्रीय समुदाय के नाम से पुकारा है, परन्तु सम्पूर्ण राष्ट्र का भी अपना एक नाम, क्षेत्र, सामान्य जीवन-विधि व विशेषताएँ होती हैं और इसलिए राष्ट्र को राष्ट्रीय समुदाय कहा जा सकता है।

2. मैकाइवर तथा पेज के अनुसार (According to MacIver and Page)

इन विद्वानों ने केवल तीन प्रकार के समुदायों का ही उल्लेख किया है और वे हैं—(क) ग्रामीण, (ख) नगरीय तथा (ग) क्षेत्रीय समुदाय।

मुख्यतः मानव समाज में दो प्रकार के समुदाय पाये जाते हैं—

(1) ग्रामीण समुदाय (Rural Community)—ग्रामीण समुदाय की सर्वप्रथम विशेषता यह होती है कि वहाँ के लोगों के लिए खेती ही मुख्य व्यवसाय होता है। इनका

Scanned with CamScanner

जीवन सादा व सरल होता है और उनके लिए धर्म, प्रथा व परम्परा का अत्यधिक महत्व होता है। ग्रामीण समुदाय के लोग एक-दूसरे को व्यक्तिगत रूप से जानते-पहचानते हैं और इसलिए वे एक-दूसरे का ख्याल रखते हैं और एक-दूसरे के सुख-दुःख में भागीदार होते हैं। 'पंच परमेश्वर' की भावना ग्रामीण समुदाय की ही विशेषता होती है। अशिक्षा, बाल-विवाह, पर्दा प्रथा, विधवा-विवाह पर रोक आदि के कारण ग्रामीण समुदाय में स्त्रियों की स्थिति निम्न होती है, पर दूसरी ओर, अधिक स्थायी एवं शान्तिपूर्ण पारिवारिक जीवन ग्रामीण समुदाय की एक विशेषता भी है।

(2) **नगरीय समुदाय** (Urban Community)– नगरीय समुदाय विभिन्नताओं व विविधताओं का समुदाय होता है। वहाँ न केवल असंख्य उद्योग, व्यापार व वाणिज्य का जाल-सा बिछा होता है बल्कि वहाँ विभिन्न वर्ग, सम्प्रदाय, जाति, वर्ग, प्रजाति, प्रान्त व देश के लोगों का जमघट होता है जिसके फलस्वरूप नगरीय समुदाय में विभिन्न भाषा, धर्म, वेश-भूषा, रहन-सहन, प्रथा, आदर्श आदि देखने को मिलते हैं, परन्तु इन भिन्नताओं के कारण ऐसे समुदाय के लोगों में व्यक्तिगत सम्बन्ध नहीं पनप पाता है अर्थात् वहाँ अवैयक्तिक सम्बन्धों का बोलबाला होता है। साथ ही 'हम की भावना' का नितान्त अभाव होता है। आबादी घनी होती है और नाना प्रकार के द्वितीयक समूह, जैसे—कॉलेज, विश्वविद्यालय, मिल, कारखाना, कोर्ट आदि का बोलबाला होता है। इसीलिए ऐसे समुदायों में जहाँ एक ओर श्रम-विभाजन व विशेषीकरण देखने को मिलता है, वहाँ दूसरी ओर प्रतिस्पर्द्धा (Competition) और सामाजिक अवसर भी खूब होते हैं। उसी प्रकार फिजूलखर्च व बाहरी ठाट-बाट, सामाजिक नियमों की बहुलता, सामाजिक गतिशीलता व परिवर्तन की तेज गति, व्यक्तिवादी आदर्श, धर्म व परिवार का कम महत्व, शिक्षा, ज्ञान व विज्ञान का अधिक प्रसार, प्रौद्योगिक उन्नति, यातायात व संचार के उन्नत साधन तथा पारिवारिक जीवन का कम स्थायित्व नगरीय समुदाय की विशेषताएँ हैं।

समुदायवाद (Communitarianism)– समुदायवाद समुदाय की महत्ता को प्रदर्शित करता है। मनुष्य का सम्पूर्ण जीवन समुदाय में ही व्यतीत हो जाता है। वह अपने समुदाय से इतना जुड़ा होता है कि उससे अलग होने पर वह असहजता अनुभव करता है। यदि एक व्यक्ति किसी कारण कारागार में चला जाता है तो वह वहाँ असहजता अनुभव करने लगता है क्योंकि वह अपने समुदाय से अलग हो जाता है यद्यपि अन्य व्यक्ति कारागार में भी होते हैं। यदि कोई व्यक्ति विदेश या देश के दूर-दराज प्रान्त में चला जाता है तो भी वह असहजता का अनुभव करता है क्योंकि उसका समुदाय उससे दूर हो जाता है। समुदायवाद की धारणा व्यक्ति में जन्म से ही बैठी होती है। यदि छोटे बच्चे को देखा जाए तो जब बच्चा चलना सीख जाता है, तब वह अपनी आयु के बच्चों में ही रहकर खेलना चाहता है उसे अपनी भूख, प्यास की चिन्ता भी नहीं होती। यदि बच्चे की माता उसे स्नान कराने, खिलाने-पिलाने के लिए ले आती है तो वह रोने लगता है और फिर जल्दी से भागकर अपने मित्रों में जाना चाहता है। यही वह भावना है जो मनुष्य को समुदायों के माध्यम से समाज में रहने के लिए बाध्य करती है। यदि यह भावना नहीं होती तो मनुष्य सामाजिक प्राणी नहीं बन पाता।

इसी कारण **बोडिन** ने समुदाय को 'सभ्यता की नैतिक इकाई' के रूप में स्वीकार किया है।

समुदाय की व्यापकता को स्पष्ट करते हुए **बोगार्डस** का कथन है कि "समुदाय का विस्तार पड़ोस से आरम्भ होकर सम्पूर्ण विश्व तक पहुँच जाता है।" उदाहरण के लिए, बचपन

में एक बच्चा जब पड़ोस के साथियों के साथ खेलता है और दूसरे क्षेत्र के बच्चों के विरुद्ध अपने-आप को संगठित करता है, तब पड़ोस ही उसका समुदाय बन जाता है। आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए जब वह गाँव के दूसरे हिस्सों पर भी निर्भर होने लगता है, तब पूरा गाँव उसका समुदाय बन जाता है। इस प्रकार जैसे-जैसे व्यक्ति की आवश्यकताएँ बढ़ती जाती हैं, उसके समुदाय के क्षेत्र का भी विस्तार होता जाता है। इसी कारण **ऑगबर्न** (Ogburn) ने यह निष्कर्ष दिया कि "समुदाय सामाजिक जीवन का सम्पूर्ण संगठन है।"

समुदायवाद की भावना आज पूरे विश्व में देखने को मिलती है। कहीं पहले नगर, राज्य का युग था वहीं आज राष्ट्रीय राज्य पाये जाते हैं और विश्व राज्य का स्वप्न देखा जाने लगा है। यद्यपि सम्प्रभुता की भावना इसमें बाधक है। लेकिन विश्व का कोई भी देश आज विश्वयुद्ध या सम्पूर्ण विनाश का पक्षपाती नहीं है। आज सम्पूर्ण विश्व में युद्ध-शान्ति के लिए U.N.O. के माध्यम से प्रयास किये जाते हैं और देशों के आपसी विवादों को युद्ध की अपेक्षा वार्ता के माध्यम से निपटाने का प्रयास किया जाता है। यह समुदायवाद का विस्तृत रूप है।

प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. समुदाय की परिभाषा दीजिए। समुदाय के आवश्यक तत्व बताइए।
2. समुदाय की परिभाषा देते हुए इसकी विशेषताएँ बताइए।
3. समुदायवाद का अभिप्राय समझाइए।
4. मनुष्य के जीवन में समुदायवाद का महत्व बताइए।

13

बहुल-संस्कृतिवाद

[MULTI-CULTURALISM]

"संस्कृति पर्यावरण का मानव-निर्मित भाग है।" —प्रो. हर्सकोविट्स

परिचय (Introduction)—साधारणतया संस्कृति का अर्थ सुन्दर, परिष्कृत, रुचिकर अथवा कल्याणकारी व्यवहारों या गुणों से लिया जाता है। संस्कृति में ज्ञान, विश्वास, कला में नीति, विधि, रीति-रिवाज आदि आते हैं। संस्कृति मनुष्य के समस्त अर्जित गुणों का निचोड़ है। आर. एम. मैकाइवर और सी. एच. पेज के शब्दों में, "यह शैलियों, मूल्यों, भावनात्मक लगावों तथा बौद्धिक अभियानों का क्षेत्र है, इस तरह संस्कृति सभ्यता का बिल्कुल प्रतिवाद है। वह हमारे रहने और सोचने के ढंगों में, दैनिक कार्य-कलापों में, कला में, साहित्य में, धर्म में, मनोरंजन और सुखोपभोग में हमारी प्रकृति की अभिव्यक्ति है।"[1]

बहुल-संस्कृतिवाद शब्द का अभिप्राय उस समाज से है जिसमें अनेक संस्कृतियाँ एक साथ पायी जाती हैं। संस्कृतिवाद शब्द संस्कृति से ही बना है। इसलिए संस्कृतिवाद को समझने के लिए पहले संस्कृति को समझना उचित होगा।

संस्कृति की परिभाषाएँ

[DEFINITIONS OF CULTURE]

विभिन्न विद्वानों ने संस्कृति की परिभाषाएँ निम्न प्रकार दी हैं—

ए. बी. टायलर के शब्दों में, "संस्कृति एक जटिल सम्पूर्ण है जिसमें ज्ञान, विश्वास, कलाएँ, नीति, विधि, रीति-रिवाज और समाज के सदस्य होकर मनुष्य द्वारा अर्जित अन्य योग्यताएँ और आदतें शामिल हैं।"[2]

रेडफील्ड के अनुसार, "संस्कृति कला और उपकरणों में जाहिर परम्परागत ज्ञान का वह संगठित रूप है जो परम्परा द्वारा संरक्षित होकर मानव समूह की विशेषता बन जाता है।"[3]

1 "This is the realm of values of styles of emotionals attachments of intellectual adventures, culture then is the antithesis of civilization. It is the expression of our nature in our modes of living and thinking in our everyday intercourse, in art, in literature, in religion, in recreation and enjoyment." —*R. M. MacIver and C. H. Page*

2 "Culture is that complex whole includes knowledge belief, art, morals, law, custom and other capabilities and habits acquired by man as a member of society." —*A. B. Tylor*

3 "An organised body of conventional understanding manifest in art and artifact, which persisting through tradition, characterises human group." —*Redfield*

हॉबेल के मतानुसार, "संस्कृति सम्बन्धित सीखे हुए व्यवहार प्रतिमानों का सम्पूर्ण योग है जो कि एक समाज के सदस्यों की विशेषताओं को बताता है और जो इसलिए प्राणिशास्त्रीय विरासत का परिणाम नहीं होता।"

डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी के अनुसार, "संस्कृति मनुष्य की विविध साधनाओं की सर्वोत्तम परिणति है।"

डॉ. नगेन्द्र के शब्दों में, "सामाजिक जीवन की आन्तरिक मूल प्रवृत्तियों का समन्वित रूप ही संस्कृति है।"

डॉ. राधाकृष्णन् के अनुसार, "संस्कृति विवेक बुद्धि का जीवन को भली प्रकार जान लेने का नाम है।"

डॉ. रामधारीसिंह 'दिनकर' के मत में, "संस्कृति जिन्दगी का एक तरीका है और यह तरीका सदियों से जमा होकर समाज में छाया रहता है जिसमें हम जन्म लेते हैं।"

पं. जवाहर लाल नेहरू के शब्दों में, "संसार भर में जो अच्छी या सर्वोत्तम बातें कही गयी हैं या जानी गयी हैं, उनसे अपने आपको परिचित करवाना ही संस्कृति है।"

डॉ. गुलाब राय के अनुसार, "जातीय संस्कार को संस्कृति कह सकते हैं।"

प्रो. हुमायूँ कबीर के शब्दों में, "संस्कृति सभ्यता का प्रस्फुटन व फलन है।"

पिडिंगटन (Pidington) के शब्दों में, "संस्कृति उन भौतिक तथा बौद्धिक साधनों या उपकरणों का सम्पूर्ण योग है जिनके द्वारा मानव अपनी प्राणिशास्त्रीय तथा सामाजिक आवश्यकताओं की सन्तुष्टि तथा अपने पर्यावरण से अनुकूलन करता है।"

मैलिनोवस्की (Malinowaski) के अनुसार, "संस्कृति प्राप्त आवश्यकताओं की एक व्यवस्था तथा उद्देश्यमूलक क्रियाओं की एक संगठित व्यवस्था है।"[1]

हॉबल (Hochel) के मतानुसार, "संस्कृति सम्बन्धित सीखे हुए व्यवहार-प्रतिमानों का सम्पूर्ण योग है जो एक समाज के सदस्यों की विशेषताओं को बतलाता है और जो इसलिए प्राणिशास्त्रीय विरासत का परिणाम नहीं होता है।"

हर्सकोविट्स (Herskovits) के शब्दों में, "संस्कृति पर्यावरण का मानव-निर्मित भाग है।"[2]

श्रेष्ठतम वरदान है। इसी दृष्टिकोण को प्रस्तुत करते हुए श्री लैण्डिस (Landis) ने लिखा है कि "संस्कृति वह दुनिया है जिसमें एक व्यक्ति जन्म से लेकर मृत्यु तक निवास करता है, चलता-फिरता है और अपने अस्तित्व को बनाए रखता है।"[3]

संस्कृति की परिभाषाओं के आधार पर कहा जा सकता है कि संस्कृति मनुष्यों के एक समूह विशेष से सम्बन्धित रीति-रिवाजों, परम्पराओं, मूल्यों, व्यवहारों एवं प्रतिमानों से बनने वाली समष्टि है, जिसमें व्यक्ति जन्म लेते हैं और विकसित होते हैं।

संस्कृति की प्रकृति और विशेषताएँ (The Nature and Attributes of Culture)

संस्कृति की प्रकृति और विशेषताएँ अग्रलिखित हैं—

1 Culture may be defined as "a system of derived needs and an organised system of purposeful activities." —*B. Malinowski*

2 "Culture is the man-made part of the environment." —*M. J. Herskovits, Man and His Work, Alfred A. Knopf, New York, 1955, p. 17.*

3 "Culture then is, in a very vital sense, the world in which one lives and moves and has his being from the time he is first house broken to the time he is ceremoniously laid down." —*Landis*

Scanned with CamScanner

(1) **संस्कृति सीखी जाती है** (Culture is Learned)—प्रजातीय या शारीरिक विशेषताओं की भाँति संस्कृति प्रजनन के माध्यम से व्यक्ति को प्राप्त नहीं होती, बल्कि यह जिस संस्कृति में जन्म लेता है उससे वह उसे सीखता है। मानव की भाषा व प्रतीकों के माध्यम से विचारों के आदान-प्रदान की शक्ति इस बात की द्योतक है कि वह दूसरों से संस्कृति के तत्वों को सीख सकता है। संस्कृतियों में भिन्नताएँ इस कारण नहीं होती हैं कि लोगों की जन्मजात क्षमताएँ भी भिन्न-भिन्न होती हैं, बल्कि इसलिए होती हैं कि उन्हें अलग-अलग तरीके से पाला-पोसा जाता है। जन्म के समय बच्चों में संस्कृति-संगत व्यवहार करने का कोई भी तरीका नहीं होता है, इन्हें तो वह बड़े होने के साथ-साथ सीखने की जटिल प्रक्रिया के माध्यम से प्राप्त करता है।

(2) **समूह के लिए संस्कृति आदर्श होती है** (Culture is an Ideal for the group)—मुरडॉक (Murdock) के मतानुसार, "काफी हद तक सामूहिक आदतों को, जिनसे संस्कृति का निर्माण होता है, व्यवहार के आदर्श-नियम या प्रतिमान (pattern) माना या कहा जाता है।" इसका तात्पर्य यह हुआ कि एक समाज या समूहों के सदस्यों की दृष्टि में उनकी संस्कृति सामाजिक व्यवहार का एक आदर्श मान (standard) है और इस कारण उसे स्वीकार करना और उसी के अनुरूप अपने व्यवहार को ढालना ही उचित है। यद्यपि यह सच है कि व्यावहारिक तौर पर इन आदर्शों को आदर्श के रूप में शायद ही ग्रहण किया जाता हो, फिर भी इस विषय में सचेतता अवश्य ही पायी जाती है, विशेषकर जब अपनी संस्कृति की तुलना दूसरी संस्कृति से करने की आवश्यकता होती है तो अपनी संस्कृति को आदर्श रूप में प्रस्तुत करने का मनोभाव उस समाज के अधिकतर लोगों में पाया जाता है। संस्कृति आदर्श इसलिए भी है कि यह व्यवहार-प्रतिमान किसी व्यक्ति का व्यवहार नहीं है, बल्कि सारे समूह का व्यवहार है। इसी कारण से व्यवहार आदर्श व्यवहार है। इन्हें मानने से समाज या समूह से प्रशंसा प्राप्त होती है और न मानने से निन्दा मिलती है।

(3) **संस्कृति मानव-आवश्यकताओं की पूर्ति करती है** (Culture Satisfies Human Wants)—मानव-समाज में संस्कृति के कुछ विशिष्ट कार्य होते हैं। वह मानव की प्राणिशास्त्रीय तथा सामाजिक दोनों ही प्रकार की आवश्यकताओं की पूर्ति के साधन जुटाती है। किसी संस्कृति या सांस्कृतिक तत्व की निरन्तरता इसी बात पर निर्भर होती है कि उसमें शारीरिक तथा सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति करने की क्षमता है या नहीं ? संस्कृति की सामूहिक आदतों में समूह की आवश्यकताओं की पूर्ति करने का गुण होता है। सम्पूर्ण संस्कृति तक की समाप्ति हो सकती है यदि वह निरन्तर अपने समाज के सदस्यों की महत्वपूर्ण शारीरिक, मानसिक व सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति करने में असफल रहे। वास्तव में एक संस्कृति के अन्तर्गत अनेक भाग और उप-भाग होते हैं, जो सम्पूर्ण सामाजिक व्यवस्था में संगठित होते हैं, यद्यपि इनमें से प्रत्येक भाग का एक विशिष्ट स्वरूप होता है। इनमें से प्रत्येक का सम्पूर्ण जीवन-विधि में या सामाजिक जीवन में कोई-न-कोई कार्य होता ही है। ये व्यर्थ में ही नहीं बने रहते। इन समस्त भागों और उप-भागों में जो पारस्परिक सम्बन्ध तथा प्रभाव होता है उनके सम्पूर्ण योग से ही संस्कृति के ढाँचे का निर्माण होता है और प्रत्येक भाग की सम्पूर्ण सांस्कृतिक व्यवस्था में जो योगदान (contribution) होता है उसे उस भाग का कार्य (function) कहते हैं, जो उसके स्वरूप (form) से पृथक् होता है।

(4) **संस्कृति में संचारित या हस्तान्तरित होने का गुण निहित है** (Culture has Transmissive Quality)—संस्कृति को केवल सीखा ही नहीं जा सकता, अपितु इसे एक मानव से दूसरे मानव तक फैलाया या एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तान्तरित भी किया जा

सकता है। मानव अपनी भाषा और प्रतीकों (Symbols) की सहायता से यह काम बड़ी सरलता से कर सकता है और अपनी संस्कृति को दूसरे लोगों में फैला देता है या एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तान्तरित कर देता है। संस्कृति के इस गुण का तात्पर्य यह हुआ कि मानव अपनी पिछली पीढ़ियों की कृतियों के आधार पर अपना वर्तमान जीवन-तरीका प्रारम्भ करता है और प्रत्येक पीढ़ी को फिर शुरू से सब-कुछ सीखना या आविष्कार करना नहीं पड़ता है। उदाहरणार्थ, यदि एक पीढ़ी घोड़ा गाड़ी का आविष्कार करती है तो दूसरी पीढ़ी को फिर से घोड़ा-गाड़ी बनाने के तरीकों को नहीं खोजना पड़ेगा, वह पिछली पीढ़ी से घोड़ा-गाड़ी बनाने के तरीकों को सीख लेगी और इस प्रकार प्राप्त अनुभवों और ज्ञान के आधार पर घोड़ा-गाड़ी से अधिक उन्नत ढंग के यातायात के साधन का आविष्कार करने का प्रयत्न करेगी जिसके फलस्वरूप साइकिल या रेलवे इंजन का आविष्कार होगा।

(5) **संस्कृति प्रत्येक समाज में एक विशेष प्रकार की होती है** (Culture is Distinctive in Every Separate Society)—प्रत्येक समाज की अपनी एक विशिष्ट संस्कृति होती है। इसका प्रमुख कारण यह है कि प्रत्येक समाज की भौगोलिक तथा सामाजिक परिस्थितियाँ भी अलग-अलग होती हैं। संस्कृति पूर्णतया सामाजिक आविष्कार का परिणाम होती है। आविष्कार करने की जरूरत मानव-आवश्यकताओं के कारण होती है। ये सामाजिक आवश्यकताएँ प्रत्येक समाज में भिन्न-भिन्न होती हैं, इसी कारण संस्कृति का रूप या स्वरूप भी प्रत्येक समाज में अलग होता है। इन सांस्कृतिक भिन्नताओं का परिणाम यह होता है कि एक समाज के सदस्यों के व्यवहारों की विशेषताएँ दूसरे समाज के सदस्यों के व्यवहारों से पृथक् होती हैं। इतना ही नहीं, संस्कृति में परिवर्तन तभी होता है जब उस समाज के विशिष्ट व्यवहारों में परिवर्तन होता है। इन विशिष्ट व्यवहारों में परिवर्तन सभी समाजों में एक-से नहीं होते, इस कारण सभी समाजों में सांस्कृतिक परिवर्तन की दिशा, गति और स्वरूप भी एक-सा नहीं होता।

(6) **संस्कृति में सामाजिक गुण निहित होता है** (Culture has Social Quality)—संस्कृति की प्रकृति निश्चय ही सामाजिक है क्योंकि संस्कृति मानव-आवश्यकताओं की प्रतिक्रियास्वरूप सामाजिक आविष्कार का फल है। समाज की परम्परा संस्कृति को जीवित रखती है। संस्कृति सामाजिक इस अर्थ में भी है कि संस्कृति किसी व्यक्ति-विशेष या दो-चार व्यक्तियों की धरोहर नहीं होती, अर्थात् संस्कृति समाज के समस्त या अधिकतर सदस्यों का सीखा हुआ व्यवहार-प्रतिमान होती है, इसीलिए संस्कृति एक समाज की सम्पूर्ण सामाजिक जीवन-विधि (Life way) का प्रतिनिधित्व करती है। इसी सामाजिक गुण के कारण समाज का प्रत्येक सदस्य संस्कृति को अपनाता है।

(7) **संस्कृति में अनुकूलन करने का गुण होता है** (Culture has Adaptive Quality)—प्रत्येक संस्कृति का प्रमुख उद्देश्य तथा कार्य मानव की शारीरिक, मानसिक तथा सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति करना होता है। अतः इन आवश्यकताओं के अनुसार संस्कृति का स्वरूप भी प्रभावित होता है और इनमें होने वाले प्रत्येक महत्वपूर्ण परिवर्तन के साथ-साथ संस्कृति के ढाँचे तथा स्वरूप में भी परिवर्तन होता रहता है। प्रत्येक युग की माँग पृथक्-पृथक् होती है, समय परिवर्तन के साथ-साथ अनेक नयी आवश्यकताएँ पनपती हैं और अनेक पुरानी आवश्यकताएँ समाप्त हो जाती हैं। इन दोनों अवस्थाओं के साथ ही अपना अनुकूलन कर सकने का गुण संस्कृति में होता है।

(8) **संस्कृति में सन्तुलन तथा संगठन होता है** (Culture has the Integrative Quality)—संस्कृति के अन्तर्गत अनेक खण्ड या इकाइयाँ होती हैं, परन्तु ये सब आकस्मिक

और अव्यवस्थित (random and haphazard) नहीं होतीं। संस्कृति के इन खण्डों या इकाइयों में एक पारस्परिक सम्बन्ध तथा अन्तर्निर्भरता होती है जिसके कारण संस्कृति में एक प्रकार का सन्तुलन तथा संगठन पाया जाता है। यह वास्तव में इसलिए होता है ताकि संस्कृति की विभिन्न इकाइयाँ बिल्कुल पृथक् होकर कार्य करतीं, प्रायः वे दूसरी इकाइयों के साथ मिलकर कार्य करती हैं। इन इकाइयों का अस्तित्व शून्य (vacuum) में नहीं होता, ये एक सम्पूर्ण सांस्कृतिक ढाँचे के अन्तर्गत व्यवस्थित ढंग से गुथी हुई या सम्बद्ध होती हैं। इस ढाँचे के अन्दर प्रत्येक इकाई की एक निश्चित स्थिति तथा कार्य होता है। इन सबका परिणाम यह होता है कि संस्कृति के सम्पूर्ण ढाँचे में सन्तुलन और संगठन होता है और चूँकि संस्कृति की विभिन्न इकाइयाँ एक-दूसरे से सम्बन्धित तथा एक-दूसरे पर आधारित होती हैं, इस कारण संस्कृति के एक भाग में कोई परिवर्तन होने पर उसका कुछ-न-कुछ प्रभाव दूसरे भागों पर अवश्य पड़ता है।

संस्कृति के तत्व
[ELEMENTS OF CULTURE]

संस्कृति का निर्माण कुछ प्रमुख तत्वों से मिलकर होता है। सांस्कृतिक तत्व की तीन विशेषताएँ हैं—

(1) प्रत्येक सांस्कृतिक तत्व का, उसकी उत्पत्ति के सम्बन्ध में, एक इतिहास होता है, चाहे वह इतिहास छोटा हो या बड़ा। उदाहरणार्थ, सर्वप्रथम घड़ी का आविष्कार किसने किया और कब किया, पहले की सूर्य-घड़ी से आधुनिक स्वयं-क्रियाशील या आप-से-आप चलने वाली (Automatic) घड़ी का क्रम-विकास कैसे हुआ, इत्यादि के सम्बन्ध में एक इतिहास है।

(2) सांस्कृतिक तत्व, संस्कृति की भाँति, स्थिर नहीं होता, गतिशीलता उसकी एक उल्लेखनीय विशेषता है। सांस्कृतिक तत्व से सम्बन्धित व्यक्ति (अर्थात् जो लोग सांस्कृतिक तत्व के अधिकारी होते हैं या उन्हें काम में लाते हैं) जैसे-जैसे एक स्थान से दूसरे स्थान को फैलते हैं या दूसरे लोगों के सम्पर्क में आते हैं, वैसे-वैसे सांस्कृतिक तत्व भी फैलते रहते हैं। एक संस्कृति-समूह दूसरे संस्कृति-समूह से मिलता है, तो सांस्कृतिक तत्वों का आदान-प्रदान होता है। आधुनिक युग में यातायात तथा संचार के साधनों में उत्तरोत्तर उन्नति होने के फलस्वरूप सांस्कृतिक तत्वों की गतिशीलता और भी बढ़ गई है।

(3) सांस्कृतिक तत्वों में पृथक्-पृथक् या छिटके हुए रहने की प्रवृत्ति नहीं होती है। ये फूलों के गुलदस्ते की तरह एक साथ घुल-मिलकर रहते हैं क्योंकि कोई भी तत्व अकेला स्थायी नहीं रह सकता। उदाहरणार्थ, घड़ी एक सांस्कृतिक तत्व है, परन्तु समस्त मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति केवल घड़ी से ही नहीं हो सकती, इसके लिए अन्य अनेक सांस्कृतिक तत्वों की आवश्यकता होगी। घड़ी के विभिन्न पुर्जों या इकाइयों में एक शृंखला या संगठन है, सभी पुर्जों को एक क्रम से लगाया जाना चाहिए, नहीं तो घड़ी नहीं चलेगी। कोई भी पुर्जा इधर-उधर हो जाने से घड़ी बेकार हो जायेगी।

रॉबर्ट बीरस्टीड के अनुसार संस्कृति के तत्वों को मोटे तौर पर दो भागों में विभाजित किया जा सकता है—

(1) **संस्कृति के अभौतिक तत्व—बीरस्टीड** ने संस्कृति के अभौतिक तत्वों को निम्नांकित दो उप-विभागों में बाँटा है—

(i) **आदर्श नियम**—व्यक्ति तथा समूहों के व्यवहारों या आचरणों को नियन्त्रित करने के लिए कुछ नियम प्रत्येक समाज में प्रचलित होते हैं जिन्हें आदर्श नियम कहा जाता है।

इन आदर्श नियमों में कानून, प्रथाएँ, परम्पराएँ, रूढ़ियाँ, जनरीतियाँ, फैशन, धार्मिक निषेध, संस्कार, सदाचार आदि को सम्मिलित किया जा सकता है।

(ii) **विचार**—प्रत्येक समाज में असंख्य विचारों का अस्तित्व होता है। ये विचार धार्मिक, राजनीतिक, आर्थिक, शारीरिक, नैतिक, काल्पनिक आदि हो सकते हैं। समाजीकरण की प्रक्रिया के दौरान मनुष्य इन विचारों को अपने व्यक्तित्व में समेटता है। इस रूप में ये संस्कृति के तत्व कहे जा सकते हैं। बीरस्टीड ने इन विचारों के आठ रूपों का उल्लेख किया है। ये हैं—(1) धार्मिक विश्वास, (2) वैज्ञानिक सत्य, (3) पौराणिक कथाएँ, (4) उपाख्यान, (5) साहित्य, (6) अन्धविश्वास, (7) सूत्र और (8) लोकोक्तियाँ तथा लोककथाएँ।

(2) **संस्कृति के भौतिक तत्व—बीरस्टीड** ने संस्कृति के भौतिक तत्वों के अन्तर्गत भौतिक पदार्थ को सम्मिलित किया है।

भौतिक पदार्थ—बीरस्टीड का कथन है कि संस्कृति केवल विचार और नियमों से मिलकर ही पूरी नहीं हो जाती वरन् इसके अन्तर्गत वे सभी भौतिक पदार्थ भी सम्मिलित होते हैं जिनका निर्माण मनुष्य ने प्रत्यक्ष रूप में किया है। यद्यपि इन भौतिक तत्वों की कोई निश्चित संख्या निर्धारित नहीं की जा सकती, फिर भी **बीरस्टीड** ने इसके तेरह रूपों का वर्णन किया है—(1) मशीन, (2) उपकरण या यन्त्र, (3) बर्तन, (4) भवन, (5) सड़कें, (6) पुल, (7) शिल्प वस्तुएँ, (8) कलात्मक वस्तुएँ, (9) कपड़े, (10) परिवहन, (11) फर्नीचर, (12) खाद्य पदार्थ और (13) दवाइयाँ।

संस्कृति के भेद
[KINDS OF CULTURE]

ऑगबर्न ने संस्कृति के दो भेद बताये हैं—

(1) **भौतिक संस्कृति—ऑगबर्न** ने भौतिक संस्कृति के अन्तर्गत समस्त मूर्त वस्तुओं या चीजों को सम्मिलित किया है। दूसरे शब्दों में, भौतिक संस्कृति के अन्तर्गत वे समस्त चीजें आती हैं जो मूर्त होती हैं अर्थात् जिन्हें प्रत्यक्ष रूप में हम देख या छू सकते हैं, जैसे—मकान, कपड़ा, फर्नीचर, रेडियो, साइकिल, उपकरण, बर्तन, मूर्तियाँ, पुस्तकें, मशीन आदि। भौतिक संस्कृति की एक प्रमुख विशेषता यह होती है कि यह मानव द्वारा प्रत्यक्ष रूप से निर्मित होती है।

(2) **अभौतिक संस्कृति**—सम्पूर्ण सामाजिक विरासत का वह भाग जो अमूर्त तथा मानव-निर्मित होता है, अभौतिक संस्कृति कहलाता है। वास्तव में अभौतिक संस्कृति के अन्तर्गत वे समस्त चीजें सम्मिलित की जाती हैं जिन्हें देखा या छुआ नहीं जा सकता और इसलिए अभौतिक संस्कृति का एक प्रमुख लक्षण अमूर्त है। अभौतिक संस्कृति के कुछ प्रमुख उदाहरण हैं—धर्म, प्रथा, परम्परा, आदर्श, भाषा, जनरीतियाँ, साहित्य, विज्ञान इत्यादि।

संस्कृति के प्रतिमान (Pattern of Culture)—अनेक सांस्कृतिक तत्वों के सम्मिलन से एक संस्कृति-संकुल बनता है, परन्तु संस्कृति के ये संकुल शून्य में रहकर कार्य नहीं करते, बल्कि सम्पूर्ण सांस्कृतिक ढाँचे के अन्तर्गत प्रत्येक संकुल का एक निश्चित स्थान या स्थिति और कार्य होता है। ये सब मिलकर एक संस्कृति की प्रमुख विशेषताओं को व्यक्त करते हैं। सांस्कृतिक ढाँचे के अन्तर्गत संस्कृति-संकुलों की उस व्यवस्था (Arrangement) को जिससे कि सम्पूर्ण संस्कृति की विशेषताएँ व्यक्त हों, संस्कृति-प्रतिमान कहते हैं।

सदरलैण्ड तथा **वुडवर्ड** के शब्दों में, "सम्पूर्ण संस्कृति के एक प्रकार का सामान्यीकृत चित्र के रूप में संकुलों का एक समग्र संस्कृति-प्रतिमान है।" **हर्सकोविट्स** के मतानुसार,

Scanned with CamScanner

संस्कृति-प्रतिमान, "एक संस्कृति के तत्वों का वह विन्यास है जो उस समाज के सदस्यों के व्यक्तिगत व्यवहार-प्रतिमान के माध्यम से व्यक्त होता हुआ, जीवन के तरीके को सम्बद्धता, निरन्तरता तथा विशिष्ट स्वरूप प्रदान करता है।

संस्कृति का मानव समाज पर प्रभाव

[EFFECT OF CULTURE ON HUMAN SOCIETY]

मानव समाज पर संस्कृति का प्रभाव निम्न प्रकार देखा जा सकता है—

(1) **व्यक्ति के व्यक्तित्व-निर्माण पर प्रभाव**—संस्कृति का व्यक्ति के व्यक्तित्व-निर्माण (personality formation) में महत्वपूर्ण योगदान रहता है। एक बच्चा कुछ जन्मजात लक्षणों के साथ पैदा होता है। वह जन्म के समय न तो सामाजिक होता है न ही समाज-विरोधी, वह तो केवल असामाजिक होता है। धीरे-धीरे समाजीकरण की प्रक्रिया के द्वारा संस्कृति के सन्दर्भ में वह एक सामाजिक प्राणी बन जाता है। उसकी आदतें, विश्वास, व्यवहार सभी-कुछ उसकी संस्कृति के अनुसार ही बनते हैं और इस रूप में उसके व्यक्तित्व का निर्माण होता है। यही कारण है कि भिन्न-भिन्न संस्कृतियों के व्यवहार और आदतें भी भिन्न-भिन्न होती हैं। उदाहरणार्थ—यूरोप और भारत में अपने से श्रेष्ठ व्यक्ति की उपस्थिति में खड़ा हुआ जाता है, जबकि पिग्मी और टोंगा में लोग बैठ जाते हैं।

(2) **आर्थिक जीवन पर प्रभाव**—संस्कृति का आर्थिक जीवन पर भी महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। प्रत्येक देश की आर्थिक उन्नति बहुत-कुछ उसकी संस्कृति पर निर्भर करती है। चूँकि अमेरिका में भौतिक उन्नति को ही सब-कुछ समझा जाता है, इसलिए वहाँ आर्थिक क्षेत्र में अत्यधिक प्रगति हुई है, परन्तु भारत में आध्यात्मिक उन्नति को अधिक महत्व दिया जाता है, इस कारण यहाँ आर्थिक उन्नति नहीं हो पाती है।

(3) **औद्योगिक विकास पर प्रभाव**—संस्कृति औद्योगिक विकास को भी प्रभावित करती है। किसी भी देश में प्रौद्योगिकी के विकास की क्या दशा होगी—इसका निर्धारण उस देश की संस्कृति ही करेगी। किसी समाज में किस प्रकार की मशीनों, उपकरणों आदि का विकास होगा और कौन-सी वस्तुओं का उत्पादन होगा—यह उस समाज-विशेष की संस्कृति ही निश्चित करती है। किसी देश के कारखानों में भोग-विलास की वस्तुएँ बनेंगी या युद्ध सामग्री का निर्माण होगा—इसका निर्णय और निर्धारण उस देश की संस्कृति करेगी।

(4) **सामाजिक ढाँचे व संगठन पर प्रभाव**—भिन्न-भिन्न संस्कृतियों में सामाजिक ढाँचे (social structure) और सामाजिक संगठन का रूप भी भिन्न-भिन्न होता है। परिवार को ही ले लीजिए। किन्हीं संस्कृतियों में संयुक्त परिवारों का आधिपत्य होता है तो किन्हीं में एकाकी (single) परिवारों का। विवाह का स्वरूप भी भिन्न-भिन्न संस्कृतियों में अलग-अलग होता है। उदाहरणार्थ, सभ्य समाजों में लड़की का अपहरण करके उससे विवाह कर लेना सामाजिक अपराध माना जाता है, किन्तु भील, गोंड आदि जनजातियों में विवाह का यही तरीका आदर्श माना जाता है।

(5) **राजनीतिक संगठन पर प्रभाव**—किसी समाज-विशेष की सरकार प्रजातन्त्र, कुलीनतन्त्र, एकतन्त्र, राजतन्त्र, साम्यवाद में से किस विचारधारा को मानेगी—यह उस समाज-विशेष की संस्कृति ही निर्धारित करेगी। सरकार किस प्रकार के कानून बनायेगी—यह भी संस्कृति ही निश्चित करती है। वास्तव में कानून, समाज-विशेष में प्रचलित प्रथाओं, परम्पराओं आदि के ही दूसरे रूप होते हैं। इसी प्रकार उस समाज-विशेष में किन-किन वर्गों को संरक्षण प्रदान किया जायेगा, क्या-क्या सामाजिक सुविधाएँ होंगी, आदि बातें संस्कृति द्वारा ही निश्चित होती हैं।

(6) **समाजीकरण की प्रक्रिया पर प्रभाव**—समाजीकरण की प्रक्रिया भी काफी सीमा तक संस्कृति द्वारा प्रभावित होती है। जब बच्चा जन्म लेता है तो उसमें कोई भी सामाजिक गुण नहीं होता, वह एक प्राणिशास्त्रीय जीव ही होता है। धीरे-धीरे परिवार, खेल के साथी व पड़ोस आदि के सम्पर्क में रहकर वह सामाजिक गुणों को सीखता है। ये सामाजिक गुण किस प्रकार के होंगे—इसका निर्धारण संस्कृति करती है।

बहुल-संस्कृतिवाद (Multi-culturalism)—आज वैश्वीकरण का युग है। यह पूँजीवाद की देन है। **जेमेसन** के शब्दों में, "पूँजीवाद अपने विस्तार के लिये सब कुछ कर सकता है। आज की संस्कृति को उसने पूँजीवाद बनाया है। इसके उत्पादन के लिये बड़े-बड़े निगम होते हैं। संस्कृति उत्पादन का कार्य बड़ा जटिल है। दुनिया में संस्कृति के जो विभिन्न प्रतिमान हैं, उन्हें ये निगम नजर अन्दाज नहीं कर सकते। अगर मैकडॉनल्ड अमेरिका में अपने मेन्यू में बेकन के कोफ्ते सम्मिलित करता है तो ऐसा वह भारत के अहमदाबाद में नहीं कर सकता। यहाँ तो उसे शाकाहारी कोफ्ते ही देने पड़ेंगे। सांस्कृतिक निगम स्थानीय अन्तर को आत्मसात करके अपने परिवेश में बैठा लेते हैं।"

थियोडोर लेविट (Theodore Levitt) ने इसे **एथनिसिटी का वैश्वीकरण** (Globalization of Ethnicity) कहा है। इसका बहुत अच्छा दृष्टान्त विभिन्न देशों में **एथनिक बाजारों** (Ethnic Market) का चल निकलना है। यह **वैश्विक स्टैण्डर्डाइजेशन** (Global Standardization) है। थियोडोर लेविट के शब्दों में, "सभी जगह चीनी खाना, पिज्जा ब्रेड, ग्रामीण या स्थानीय और पश्चिमी संगीत मिलना सामान्य बात है। इस तरह का एथनिक खाना वैश्वीकरण की भाषा में विशिष्ट खाना कहा जाता है और वैश्वीकरण का कभी भी यह अर्थ नहीं है कि इसमें खण्डिता नहीं होती। इसके विपरीत, वैश्वीकरण का मतलब होता है स्थानीय सांस्कृतिक पदार्थों को दुनिया भर में पहुँचाना।"

आधुनिकीकरण ने दुनिया भर की संस्कृतियों को मिश्रित करने का प्रयास किया है फिर भी इस मिश्रण में पश्चिमी और अमेरिकी संस्कृतियों की प्रधानता होती है। ऐसी अवस्था में जब यह वैश्विक संस्कृति स्थानीय संस्कृति के सम्पर्क में आती है, तब वैश्विक संस्कृति को वैधता पाने के स्थानीय संस्कृति के साथ अनुकूलन अवश्य करना पड़ता है। इस्लाम के उम्मा (Umma) को कभी भी नजरअन्दाज नहीं किया जा सकता है। किसी परिवेश की उपेक्षा नहीं की जाती। जब मानव अधिकार की बात उठती है, तब स्थानीय संस्कृति के तत्वों के साथ किसी न किसी प्रकार का अनुकूलन अवश्य करना पड़ता है।

केविन रोबिन्स ने कहा है कि वैश्विक और स्थानीय संस्कृति की अन्तःक्रिया को कभी भी अवरुद्ध नहीं किया जा सकता। वैश्वीकरण कभी भी अस्थानीयकरण (De-Localization) नहीं करता। यह सही है कि आज की दुनिया एक मीडिया दुनिया (Media World) है, लेकिन इस दुनिया से कभी भी स्थानीय दुनिया को काटा नहीं जा सकता। **केविन रोबिन्स** के शब्दों में, "स्थान और संस्कृति की जो जमीनी हकीकत है उसको हम कभी भी उपेक्षा नहीं कर सकते। उन्हें नजर अन्दाज नहीं कर सकते। **वैश्वीकरण का सम्बन्ध वस्तुतः पुनःस्थानीय** (Re-Localization) से है। विश्व और स्थानीयता के सम्बन्धों से जो नई चीज उभरती है वह स्थानीयता को बहुलवादी बनाती है।"

पूँजीवाद ने वैश्वीकरण के माध्यम से धर्मनिरपेक्ष संस्कृति का प्रचार-प्रसार किया है। इसीलिए चीन में पूँजीवाद के पहुँचने से वहाँ ईसाई धर्म का प्रचार नहीं किया जाता।

Scanned with CamScanner

यूरोप और अमेरिका में आधुनिकता और प्रजातन्त्र ने जिस संस्कृति को विकसित किया है वह वस्तुत: **सर्वदेशीय** (Cosmopolition) संस्कृति है।

स्टुअर्ट हॉल ने सर्वदेशीय संस्कृति के विकास में निम्न बिन्दुओं पर जोर दिया है—

1. लोगों को उनके देश के इतिहास की जानकारी हो जाती है। उन्हें बताया जाता है कि उनके देश ने कहाँ विजय पाई, और कहाँ पराजय। यह भी बताया जाता है कि किन विषम परिस्थितियों का मुकाबला उनके देश ने किया। अकाल, बाढ़ आदि आपात स्थितियों की जानकारी लोगों को प्रमाणित रूप से दी जाती हैं। इससे सिक्यूलर और सर्वदेशीय संस्कृति के निर्माण में सहायता मिलती है।

2. इन देशों ने कथा, कहानी और परम्पराओं द्वारा राष्ट्रीय चरित्र निर्माण की प्रक्रियाओं को प्रसारित किया।

3. राष्ट्रीय प्रतीकों, राष्ट्रीय त्यौहारों आदि के सम्बन्ध में लोगों को पर्याप्त जानकारी दी जाती है।

4. राष्ट्र के चरित्र को सर्वग्राही बनाने के लिये कई मिथकों का निर्माण किया जाता है।

बहुल संस्कृतिवाद को बढ़ाने में वैश्वीकरण का बहुत बड़ा योगदान रहा है। वैश्वीकरण के माध्यम से जो संस्कृति दूर-दराज के क्षेत्र में पहुँचती है, उसकी प्रकृति अनिवार्य रूप से सर्वदेशीय होती है। होता यह है कि जब अनेक संस्कृतियाँ स्थानीय संस्कृति पर अपना प्रभाव डालती हैं तो इसके परिणाम स्वरूप जो संस्कृति उभर कर आती है, वह सर्वदेशीय होती है। उदाहरणार्थ हमारे देश में मुम्बई शहर महानगर है। एक करोड़ से भी अधिक यहाँ की जनसंख्या है। इस महानगर में देश के विभिन्न राज्यों के लोग निवास करते हैं। प्रत्येक की अपनी एथनिसिटी है। केरल के लोग आपस में मलयालम भाषा में सम्पर्क करते हैं। चावल का पकवान खाते हैं, पहनावा उनका अपनी परम्परा के हिसाब से है। इसी मुम्बई में यूपी के भैया भी रहते हैं, राजस्थान के मारवाड़ी भी निवास करते हैं। तात्पर्य यह है कि इस महानगर में ढेर सारी **एथनिसिटियाँ** हैं, लेकिन सामान्य अन्तक्रिया और दिन-प्रतिदिन के काम-काज के लिये लोगों ने **सर्वदेशीय** संस्कृति को अपनाया है। इसमें इस महानगर ने अपनी एक विशिष्ट भाषा बना ली है। इसे **मुंबइया** भाषा कहा जाता है। यह सर्वदेशीय संस्कृति मुख्य रूप से वैश्वीकरण की सांस्कृतिक देन है।

बहुल-संस्कृतिवाद अनेक संस्कृतियों के मेल-मिलाप का नाम है। आज इसका उदाहरण किसी भी शहर में मिल सकता है। उदाहरणार्थ, **देव प्रकाश चौधरी** ने अपने लेख **पाना, सोना, खोजना, साँसों का इतिहास** में अमर उजाला 8 जनवरी, 2015 के रूपायन में लिखा है कि हम जिस समाज में और जिस संसार में आज रह रहे हैं, उसमें सबसे बड़ी सत्ता है—एक-से पन की। अलग-अलग इलाकों, शहरों और महानगरों में अपने-अपने घरों में रहते, जीते हम सब एक-सी धूप के लिए तरसते हैं। एक-सा पानी पीते हैं। बिना किए, योग के फायदे पर एक-सी राय रखते हैं। हम सबके पहनावे एक हैं। हम सबका खाना एक है। उसका स्वाद भी लगभग एक-सा हो गया है। हम सब लगभग एक समय में खबर देखते हैं। एक समय में सिनेमा देखते हैं। एक-सा च्यवनप्राश खाते हैं। एक समय में दफ्तर की ओर भागते हैं। एक वक्त में ही करीब-करीब घर की ओर लौटते हैं। एक-सी हँसी हँसते हैं और एक-सी बेचैन कर देने वाली समस्या से जूझते रहते हैं कि 'टिंकू सारा दिन मोबाइल पर गेम से चिपका रहता है।' जाहिर है इस एक-से-पन की संस्कृति को हमने न सिर्फ स्वीकार किया है, बल्कि उसे दिल के

Scanned with CamScanner

ड्राइंगरूम में करीने से सजाकर रखा है। बुआ पहले आती थी तो मथुरा का पेड़ा भी आता था। चाचाजी आगरा से पेठा लिए बगैर नहीं आते थे। खास मौके पर घर में कन्नौज से इत्र आता था। अब दिल्ली में मथुरा है। मथुरा में दिल्ली। आगरा का पेठा हर शहर में है और अपनी जिन्दगी की मिठास को हमने कैश काउंटर पर जमा कराना सीख लिया है।

इस प्रकार आज धर्म, जाति, भाषा, रंग, रूप, खान-पीन, पहनावा, पूजा-पाठ की पद्धति, शादी-विवाह की रीति-रिवाज आदि के आधार पर किसी देश में या क्षेत्र में एकल संस्कृति का पाया जाना अनिवार्य नहीं रह गया है। शिक्षा, मीडिया, पूँजीवाद, बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की उपस्थिति, वैश्वीकरण आदि ने एक ही क्षेत्र में बहुत-सी संस्कृतियों को पनपने और विकसित होने का अवसर प्रदान किया है। यह संस्कृतियों का मिलन आज समाज में दृष्टिगोचर भी होता है। इससे आज बच पाना सरल नहीं है। यह आज समय की माँग भी है और आवश्यकता भी। यही बहुल-संस्कृतिवाद है।

Scanned with CamScanner